ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

पं०श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ प्रखर प्रज्ञाय विद्महे, महाकालाय धीमहि। तन्नो श्रीरामः प्रचोदयात्॥

भगवती देवी शर्मा

ॐ सजल श्रद्धायै विद्महे, महाशक्त्यै धीमहि। तन्नो भगवती प्रचोदयात्॥

चार कार्यक्रम

१- नियमित गायत्री उपासना
२- पारिवारिक जीवन में संस्कारों का प्रचलन
3- विद्या मंदिर-नियमित युग निर्माण साहित्य स्वाध्याय
४- तुलसी स्थापन, सूर्यार्घ्य दान

प्रखर-प्रज्ञा

सजल-श्रद्धा

देवस्थापना, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

चार उपलब्धियाँ

१- आत्मशक्ति का अभ्युदय
२- व्यक्तित्व का निर्माण
3- सद्चिंतन, सत्कर्म, सद्व्यवहार
४- श्रद्धा संवर्धन
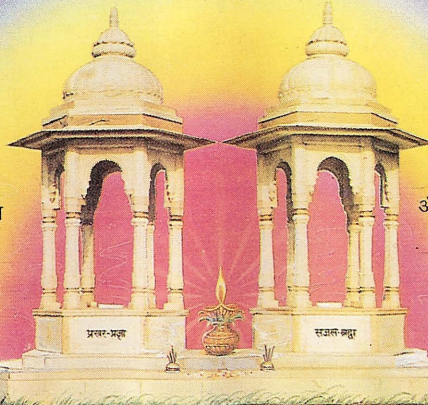
प्रारम्भिक कर्मकाण्ड

कर्मकाण्ड की व्यवस्था बनाकर, जाँच कर जब कर्मकाण्ड प्रारम्भ करना हो, तो संचालक को सावधान होकर वातावरण को अनुकूल बनाना चाहिए। कुछ जयघोष बोलकर शान्त रहने की अपील करके कार्य प्रारम्भ किया जाए। संचालक आचार्य का काम करने वाले स्वयंसेवक को नीचे दिये गये अनुशासन के साथ कार्य प्रारम्भ करना चाहिए, वे हैं-(१) व्यासपीठ नमन, (२) गुरु वन्दना, (३) सरस्वती वन्दना, (४) व्यास वन्दना।

यह चारों कृत्य कर्मकाण्ड के पूर्व के हैं। यजमान के लिए नहीं, संचालक-आचार्य के लिए हैं। कर्मकाण्ड ऋषियों-मनीषियों द्वारा विकसित ज्ञान-विज्ञान से समन्वित अद्‌भुत कृत्य हैं, उस परम्परा का निर्वाह हमसे हो सके, इसलिए उस स्थान को तथा अपने आपको संस्कारित करने, उस दिव्य प्रवाह का माध्यम बनने की पात्रता पाने के लिए यह कृत्य किये जाते हैं।

व्यासपीठ नमन - व्यास पीठ पर-संचालक के आसन पर बैठने के पूर्व उसे श्रद्धापूर्वक नमन करें। यह हमारा आसन नहीं-व्यासपीठ है। इसके साथ एक पुनीत परिपाटी जुड़ी है। उस पर बैठकर उस परिपाटी के साथ न्याय कर सकें-इसके लिए उस पीठ की गरिमा-मर्यादा को प्रणाम करते हैं, तब उस पर बैठते हैं।

॥ गुरु वन्दना ॥

गुरु व्यक्ति तक सीमित नहीं, वह एक दिव्य चेतन प्रवाह ईश्वर का ही एक अंश होता है। परीक्षा लेकर पास फेल करने वाले तथा पास बिठाकर पढ़ाने वाले दोनों ही शिक्षक कहे जाते हैं। चेतना का एक अंश जो अनुशासन व्यवस्था बनाता, उसका फल देता है-वह ईश्वर है, दूसरा अंश जो अनुशासन-मर्यादा सिखाता है, उसमें गति पैदा कराता है, वह गुरु है।

ऐसी चेतना के रूप में गुरु की वन्दना करके उस अनुशासन को अपने ऊपर आरोपित करना चाहिए, उसका उपकरण बनने के लिए भाव-भरा आवाहन करना चाहिए; ताकि अपनी वृत्तियाँ और शक्तियाँ उसके अनुरूप कार्य करती हुई, उस सनातन गौरव की रक्षा कर सकें। हाथ जोड़कर नीचे

लिखी गुरु-वन्दनाओं में से कोई एक अथवा वैसी ही अन्य वन्दनाएँ भावनापूर्वक सस्वर बोलें।

ॐ ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥१ ॥ गु० गी० ६७
अखण्डानन्दबोधाय शिष्यसंतापहारिणे।
सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः ॥२ ॥

॥ सरस्वती वन्दना ॥

माँ सरस्वती वाणी की देवी हैं। कर्मकाण्ड में वाणी का प्रयोग करना पड़ता है। यदि वाणी सुसंस्कृत न हुई, तो उसमें प्रभाव पैदा नहीं होगा, बोले गये मन्त्र शब्द मात्र न रह जाएँ, मंत्र बनें, कहे हुए शब्दों में अन्तःकरण को प्रभावित करने योग्य प्राण पैदा हो, इस कामना-भावना के साथ माँ सरस्वती की भाव-भरी वन्दना की जाए।

लक्ष्मीर्मेधा धरापुष्टिः, गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः।
एताभिः पाहि तनुभिः, अष्टाभिर्मां सरस्वति ॥१ ॥
सरस्वत्यै नमो नित्यं, भद्रकाल्यै नमो नमः।
वेद वेदान्तवेदाङ्ग, विद्यास्थानेभ्य एव च ॥२ ॥
मातस्त्वदीयपदपंकज - भक्तियुक्ता,
ये त्वां भजन्ति निखिलानपरान्विहाय।
ते निर्जरत्वमिह यान्ति कलेवरेण,
भूवह्निवायुगगनाम्बुविनिर्मितेन ॥३ ॥

॥ व्यास वन्दना ॥

व्यासपीठ पर बैठकर कर्मकाण्ड संचालन का जो उत्तरदायित्व उठाया है, उसके अनुरूप अपने अन्तःकरण, बुद्धि, मन, वाणी आदि को बनाने की याचना, उसके निर्वाह का प्रयास पूरी ईमानदारी से करने के संकल्प की घोषणा के भाव से व्यास वन्दना के एक-दो श्लोक भाव विभोर होकर बोले जाएँ।

व्यासाय विष्णुरूपाय , व्यासरूपाय विष्णवे ।
नमो वै ब्रह्मनिधये, वासिष्ठाय नमो नमः ॥१ ॥
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे, फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णः, प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥

- ब्र० पु० २४५.७.११

ये सभी कृत्य आचार्य-संचालक के अपने संस्कार के हैं । इन्हें जितनी प्रगाढ़ श्रद्धा के साथ किया जाता है, दिव्य प्रवाह से जुड़ जाने की उतनी ही प्रभावी संभावना बन जाती है ।

* * *

॥ साधनादिपवित्रीकरणम् ॥

सत्कार्यों-श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए यथाशक्ति साधन-माध्यम भी पवित्र रखने चाहिए। यज्ञ, संस्कार आदि कार्यों में जो उपकरण साधन-सामग्री प्रयुक्त हों, उनमें भी देवत्व का संस्कार जगाया जाता है । फल काटने का चाकू साफ किया, पोंछा जाता है । आपरेशन के चाकू को भाप में ऊँचे दबाव और तापक्रम पर शोधित किया जाता है, अदृश्य विषाणुओं से मुक्त किया जाता है। कर्मकाण्ड में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों-साधनों में सन्निहित अशुभ संस्कार हटाये जाते हैं, उन्हें मंत्र शक्ति से नष्ट किया जाता है ।

परिस्थितियों के अनुरूप एक या अधिक स्वयंसेवक जल कलश लेकर खड़े हों। मंत्र पाठ के साथ पल्लवों, कुशाओं या पुष्पों से सभी उपकरणों-साधनों का सिंचन करें । समिधा, पात्र, हव्य आदि सभी का सिंचन किया जाए । भावना करें कि भाव भरे आवाहन और मंत्र शक्ति के प्रभाव से उनमें कुसंस्कारों के पलायन और सुसंस्कारों के उभार-स्थापन का क्रम चल रहा है ।

ॐ पुनाति ते परिस्रुत ꣳ सोम ꣳ सूर्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना। - १९.४

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः, पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि, जातवेदः पुनीहि मा। - १९.३९

ॐ यत्ते पवित्रमर्चिषि, अग्ने विततमन्तरा।
ब्रह्म तेन पुनातु मा॥ १९.४१

ॐ पवमानः सो अद्य नः, पवित्रेण विचर्षणिः।
यः पोता स पुनातु मा। - १९.४२

ॐ उभाभ्यां देव सवितः, पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः॥ -१९.४३

यह क्रम यज्ञों, संस्कारों, भूमि-पूजन, प्राण-प्रतिष्ठा, पर्वायोजनों आदि सभी में अपनाये जाने योग्य है।

* * *

॥ सामान्य प्रकरण ॥

(यज्ञ-संचालन)

॥ मंगलाचरणम् ॥

यज्ञ कर्म अथवा अन्य धर्मानुष्ठानों को सम्पन्न करने वाले याजकों के आसन पर बैठते समय उनके कल्याण, उत्साह अभिवर्धन, सुरक्षा और प्रशंसा के लिए पीले अक्षत अथवा पुष्प वर्षा की जाती है, स्वागत किया जाता है, मंत्र के साथ भावना की जाए कि इस पुण्य कर्म में भाग लेने वालों पर देव अनुग्रह बरस रहा है और देवत्व के धारण तथा निर्वाह की क्षमता का विकास हो रहा है। आचार्य निम्न मंत्र से यजमान के ऊपर चावल फेंके।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा, भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ँ्सस्तनूभिः, व्यशेमहि देव हितं यदायुः ॥२५.२१

॥ पवित्रीकरणम् ॥

देव उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य को स्वयं भी देवत्व धारण करना होता है। देव शक्तियाँ पवित्रता प्रिय हैं। उन्हें शरीर और मन से, आचरण और व्यवहार से शुद्ध मनुष्य ही प्रिय होते हैं। इसलिए यज्ञ जैसे देव प्रयोजन में संलग्न होते समय शरीर और मन को पवित्र बनाना पड़ता है। पवित्रता की भावना करनी पड़ती है। भावना करें कि हमारे भाव भरे आवाहन के नाते सूक्ष्म सत्ता हम पर पवित्रता की वृष्टि कर रही है। हम उसे धारण कर रहे हैं।

बायें हाथ में जल लेकर उसे दाहिने हाथ से ढक लिया जाए। मंत्रोच्चारण के बाद उस जल को सिर तथा शरीर पर छिड़क लिया जाए।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
ॐ पुनातु पुण्डरीकाक्षः, पुनातु पुण्डरीकाक्षः, पुनातु।

- वा० पु० ३३.६

॥ आचमनम् ॥

वाणी, मन और अन्तःकरण की शुद्धि के लिए तीन बार आचमन किया जाता है, मन्त्रपूरित जल से तीनों को भाव स्नान कराया जाता है। आयोजन के अवसर पर तथा भविष्य में तीनों को अधिकाधिक समर्थ, प्रामाणिक बनाने का संकल्प किया जाता है। हर मन्त्र के साथ एक आचमन किया जाए।

ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१ ॥

ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२ ॥

ॐ सत्यं यशः श्रीर्मयि, श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३ ॥

- आश्व० गृ० सू० १.२४ मा० गृ० सू० १.९

॥ शिखावन्दनम् ॥

शिखा भारतीय धर्म की ध्वजा है, जो मस्तकरूपी किले के ऊपर हर भारतीय संस्कृति प्रेमी को फहराते रहनी पड़ती है। इसे गायत्री का प्रतीक भी माना गया है। मस्तिष्क सद्विचारों का केन्द्र है। इसमें देव भाव ही प्रवेश करने पाएँ। भावना करें कि सांस्कृतिक ध्वजा को धारण करने योग्य प्रखरता, तेजस्विता का विकास हो रहा है।

दाहिने हाथ की अँगुलियों को गीला कर शिखा स्थान का स्पर्श करें। मन्त्र बोलने के बाद शिखा में गाँठ लगाएँ। जिनके संयोगवश शिखा नहीं, ऐसे व्यक्ति तथा महिलाएँ उस स्थान को भावनापूर्वक स्पर्श करें।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेजः समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये, तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे ॥ -सं० प्र०

॥ प्राणायामः ॥

कमर सीधी, बायाँ हाथ मुड़ा हुआ, हथेली चौड़ी, दाहिने हाथ की कोहिनी बायें हाथ की हथेली पर बीचों-बीच, चारों अँगुलियाँ बन्द। अँगूठे से दाहिने नथुने को बंद करके, बायें नथुने से धीरे-धीरे पूरी साँस खींचना-यह पूरक हुआ। साँस को भीतर रोकना, दायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों से बायाँ नथुना भी बंद कर लेना,

अर्थात् दोनों नथुने बंद। यह अन्तःकुम्भक हुआ। अँगूठा हटाकर दाहिना नथुना खोल देना, उसमें से साँस को धीरे-धीरे बाहर निकलने देना, यह रेचक हुआ। इसके बाद कुछ समय साँस बाहर रोक देना चाहिए। बिना साँस के रहना चाहिए, इसे बाह्यकुम्भक कहते हैं। इन चार क्रियाओं को करने में एक प्राणायाम पूरा होता है, यह क्रिया कठिन लगे, तो दोनों हाथ गोद में रखते हुए दोनों नथुनों से श्वास लेते हुए पूरक, कुम्भक, रेचक का क्रम नीचे लिखी भावनानुसार पूरा करें।

साँस खींचने के साथ भावना करनी चाहिए कि संसार में व्याप्त प्राणशक्ति और श्रेष्ठता के तत्त्वों को साँस द्वारा खींच रहे हैं। साँस रोकते समय भावना करनी चाहिए कि वह प्राणशक्ति, दिव्यशक्ति तथा श्रेष्ठता अपने रोम-रोम में प्रवेश करके उसी में रम रही है। जैसे मिट्टी पर जल डालने से वह उसे सोख लेती है, उसी तरह शरीर और मन ने प्राणायाम की साँस जो भीतर पहुँची है, उसकी समस्त श्रेष्ठता को अपने में सोख लिया है। साँस छोड़ते समय यह भावना करनी चाहिए कि जितने भी दुर्गुण अपने में थे, वे साँस के साथ निकल कर बाहर चले गये। इसके उपरान्त कुछ समय बिना साँस ग्रहण किये रहना चाहिए और भावना करनी चाहिए कि निकलते हुए दोष-दुर्गुणों को सदा के लिए बहिष्कृत कर दिया गया और उनको पुनः वापस न आने देने के लिए दरवाजा बन्द कर दिया गया।

मन्त्रोच्चार दूसरे लोग करते रहें। याज्ञिक केवल प्राणायाम-विधान पूरा करें। यह प्राणायाम अपने भीतर शरीरबल-मनोबल और आत्मबल की वृद्धि के लिए है। दोष-दुर्गुणों के निवारण, निष्कासन के लिए उन्हीं भावनाओं के साथ उसे करना चाहिए।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः, ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं,ब्रह्म भूर्भुवः स्वः ॐ।

- तै० आ० १०.२७

॥ न्यासः ॥

बायें हाथ की हथेली पर जल लेना, दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों को इकट्ठा करना, उन एकत्रित अँगुलियों को हथेली वाले जल में डुबोना। अब जहाँ-जहाँ मन्त्रोच्चार के संकेत हों, वहाँ पहले बायीं ओर फिर दाहिनी ओर के क्रम से स्पर्श करते हुए हर बार में एकत्रित अँगुलियाँ डुबोते और लगाते चलना-यह न्यास कर्म है। इसका प्रयोजन है-शरीर के अति महत्त्वपूर्ण अंगों में पवित्रता की भावना भरना, उनकी दिव्य चेतना को जाग्रत् करना। अनुष्ठान काल में उनके जाग्रत् देवत्व से सारे कृत्य पूरे करना तथा इसके अनन्तर ही इन अवयवों को, इन्द्रियों को सशक्त एवं संयत बनाये रहना।

भावना करें कि इन्द्रियों-अंगों में मन्त्र शक्ति के प्रभाव से दिव्य प्रवृत्तियों की स्थापना हो रही है। ईश्वरीय चेतना हमारे आवाहन पर वहाँ विराजित होकर अशुभ का प्रवेश रोकेगी, शुभ को क्रियान्वित करने की प्रखरता बढ़ायेगी।

ॐ वाङ् मे आस्येऽस्तु। (मुख को)

ॐ नसोर्मे प्राणोऽस्तु। (नासिका के दोनों छिद्रों को)

ॐ अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। (दोनों नेत्रों को)

ॐ कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। (दोनों कानों को)

ॐ बाह्वोर्मे बलमस्तु। (दोनों भुजाओं को)

ॐ ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु। (दोनों जंघाओं को)

ॐ अरिष्टानि मेऽङ्गानि, तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। (समस्त शरीरपर)

- पा० गृ० सू० १.३.२५

॥ पृथ्वी पूजनम् ॥

हम जहाँ से अन्न, जल, वस्त्र, ज्ञान तथा अनेक सुविधा-साधन प्राप्त करते हैं, वह मातृभूमि हमारी सबसे बड़ी आराध्या है। हमारे मन में माता के प्रति

जैसी अगाध श्रद्धा होती है, वैसी ही मातृभूमि के प्रति भी रहनी चाहिए और मातृ ऋण से उऋण होने के लिए अवसर ढूँढ़ते रहना चाहिए। भावना करें कि धरतीमाता के पूजन के साथ उसके पुत्र होने के नाते माँ के दिव्य संस्कार हमें प्राप्त हो रहे हैं। माँ विशाल है, सक्षम है। हमें भी क्षेत्र, वर्ग आदि की संकीर्णता से हटाकर विशालता, सहनशीलता, उदारता जैसे दिव्य संस्कार प्रदान कर रही है। दाहिने हाथ में अक्षत (चावल), पुष्प, जल लें, बायाँ हाथ नीचे लगाएँ, मन्त्र बोलें और पूजा वस्तुओं को पात्र में छोड़ दें। धरती माँ को हाथ से स्पर्श करके नमस्कार करें।

ॐ पृथ्वि ! त्वया धृता लोका, देवि ! त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम्॥ -सं० प्र०

॥ सङ्कल्पः ॥

हर महत्त्वपूर्ण कर्मकाण्ड के पूर्व सङ्कल्प कराने की परम्परा है, उसके कारण इस प्रकार हैं - अपना लक्ष्य, उद्देश्य निश्चित होना चाहिए। उसकी घोषणा भी की जानी चाहिए। श्रेष्ठ कार्य घोषणापूर्वक किये जाते हैं, हीन, कृत्य छिपकर करने का मन होता है। संकल्प करने से मनोबल बढ़ता है। मन के ढीलेपन के कुसंस्कार पर अंकुश लगता है, स्थूल घोषणा से सत्पुरुषों का तथा मन्त्रों द्वारा घोषणा से सत् शक्तियों का मार्गदर्शन और सहयोग मिलता है। सङ्कल्प में गोत्र का उल्लेख भी किया जाता है। गोत्र ऋषि परम्परा के होते हैं। यह बोध किया जाना चाहिए कि हम ऋषि परम्परा के व्यक्ति हैं, तदनुसार उनके अनुरूप कार्यों को करने का उपक्रम उन्हीं के अन्तर्गत करते हैं। सङ्कल्प बोलने के पूर्व मास, तिथि, वार आदि सभी की जानकारी कर लेनी चाहिए। बीच में रुक-रुककर पूछना अच्छा नहीं लगता। यहाँ जो सङ्कल्प दिया जा रहा है, वह किसी भी कृत्य के साथ बोला जा सकता है, इसके लिए **'पूजनपूर्वकं'** के आगे किये जाने वाले कृत्य का उल्लेख करना होता है, जैसे गायत्रीयज्ञ, विद्यारम्भ संस्कार, **चतुर्विंशतिसहस्रात्मकगायत्रीमन्त्रानुष्ठान** आदि। जिस कृत्य का संकल्प करना है, उसे हिन्दी में ही बोलकर **'कर्म सम्पादनार्थं'** के साथ मिला देने से संकल्प की संस्कृत शब्दावली पूरी हो जाती है। वैसे भिन्न कृत्यों के अनुरूप सङ्कल्प, **नामाऽहं** के आगे भिन्न-भिन्न

निर्धारित वाक्य बोलकर भी पूरा किया जा सकता है। सामूहिक पर्वों, साप्ताहिक यज्ञों आदि में सङ्कल्प नहीं भी बोले जाएँ, तो कोई हर्ज नहीं।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य, अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, भूर्लोके, जम्बूद्वीपे, भारतवर्षे, भरतखण्डे, आर्यावर्त्तैकदेशान्तर्गते, ... क्षेत्रे,..... विक्रमाब्दे ,...... संवत्सरे, मासानां मासोत्तमेमासे ..... मासे ...... पक्षे ...... तिथौ ...... वासरे ...... गोत्रोत्पन्नः ...... नामाऽहं सत्प्रवृत्ति-संवर्द्धनाय, दुष्प्रवृत्ति-उन्मूलनाय, लोककल्याणाय, आत्मकल्याणाय, वातावरण-परिष्काराय, उज्ज्वलभविष्यकामनापूर्तये च प्रबलपुरुषार्थं करिष्ये, अस्मै प्रयोजनाय च कलशादि- आवाहितदेवता-पूजनपूर्वकम् ...... कर्मसम्पादनार्थं सङ्कल्पम् अहं करिष्ये।

॥ यज्ञोपवीतपरिवर्तनम् ॥

यज्ञोपवीत को व्रतबन्ध भी कहते हैं। यह व्रतशील जीवन के उत्तरदायित्व का बोध कराने वाला पुण्य प्रतीक है। विशेष यज्ञ संस्कार आदि आयोजनों के अवसर पर उसमें भाग लेने वालों का यज्ञोपवीत बदलवा देना चाहिए। साप्ताहिक यज्ञों में यह आवश्यक नहीं। नवरात्रि आदि अनुष्ठानों के सङ्कल्प के समय यदि यज्ञोपवीत बदला गया है, तो पूर्णाहुति आदि में फिर न बदला जाए। व्यक्तिगत संस्कारों आदि में प्रमुख पात्रों का, बच्चों के अभिभावकों आदि का यज्ञोपवीत बदलवा देना चाहिए। यदि वे यज्ञोपवीत पहने ही न हों, तो कम से कम कृत्य के लिए अस्थाई रूप से पहना देना चाहिए। वे चाहें तो स्थाई भी करा लें।

यज्ञोपवीत बदलने के लिए यज्ञोपवीत का मार्जन किया जाए। यज्ञोपवीत संस्कार की तरह पाँच देवों का आवाहन-स्थापन उसमें किया जाए, फिर यज्ञोपवीत धारण मन्त्र के साथ साधक स्वयं ही पहन लें। पुराना यज्ञोपवीत दूसरे मन्त्र के साथ सिर की ओर से ही उतार दिया जाए। पुराने

यज्ञोपवीत को जल में विसर्जित कर दिया जाता है अथवा पवित्र भूमि में गाड़ दिया जाता है ।

॥ यज्ञोपवीतधारणम् ॥

निम्न मन्त्र बोलकर नया यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए ।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं , यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

-पार० गृ० सू० २.२.११

॥ जीर्णोपवीत विसर्जनम् ॥

निम्न मन्त्र पाठ करते हुए पुराना यज्ञोपवीत गले में से ही होकर निकालना चाहिए ।

ॐ एतावद्दिनपर्यन्तं, ब्रह्म त्वं धारितं मया ।
जीर्णत्वात्ते परित्यागो, गच्छ सूत्र यथा सुखम् ॥

॥ चन्दनधारणम् ॥

मस्तिष्क को शान्त, शीतल एवं सुगन्धित रखने की आवश्यकता का स्मरण कराने के लिए चन्दन धारण किया जाता है । अन्तःकरण में ऐसी सद्भावनाएँ भरी होनी चाहिए , जिनकी सुगन्ध से अपने को सन्तोष एवं दूसरों को आनन्द मिले ।

भावना करें जिस महाशक्ति ने चन्दन को शीतलता-सुगन्धि दी है , उसी की कृपा से हमें भी वे तत्त्व मिल रहे हैं, जिनके आधार पर हम चन्दन की तरह ईश्वर सान्निध्य के अधिकारी बन सकें ।

इन भावनाओं के साथ यज्ञकर्त्ताओं एवं उपस्थित लोगों के मस्तक पर चन्दन या रोली लगाया जाए ।

ॐ चन्दनस्य महत्पुण्यं, पवित्रं पापनाशनम् ।
आपदां हरते नित्यं, लक्ष्मीस्तिष्ठति सर्वदा ॥

॥ रक्षासूत्रम् ॥

यह वरण सूत्र है। आचार्य की ओर से प्रतिनिधियों द्वारा बाँधा जाना चाहिए। पुरुषों तथा अविवाहित कन्याओं के दायें हाथ में तथा महिलाओं के बायें हाथ में बाँधा जाता है। जिस हाथ में कलावा बाँधें, उसकी मुट्ठी बँधी हो, दूसरा हाथ सिर पर हो। इस पुण्य कार्य के लिए व्रतशील बनकर उत्तरदायित्व स्वीकार करने का भाव रखा जाए।

ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ -१९.३०

॥ कलशपूजनम् ॥

पूजा पीठ पर कलश रखा जाता है। यह धातु का होना चाहिए। कण्ठ में कलावा बँधा, पुष्पों से सुसज्जित, जल से भरे कलश के ऊपर कटोरी में ऊपर की ओर मुख वाली बत्ती का दीपक जला कर रखें।

यह कलश विश्व ब्रह्माण्ड का, विराट् ब्रह्म का, भू पिण्ड (ग्लोब) का प्रतीक है। इसे शान्ति और सृजन का संदेशवाहक कह सकते हैं। सम्पूर्ण देवता कलशरूपी पिण्ड या ब्रह्माण्ड में व्यष्टि या समष्टि में एक साथ समाये हुए हैं। वे एक हैं, एक ही शक्ति से सुसम्बन्धित हैं। बहुदेववाद वस्तुतः एक देववाद का ही एक रूप है। एक माध्यम में, एक ही केन्द्र में समस्त देवताओं को देखने के लिए कलश की स्थापना है। जल जैसी शीतलता, शान्ति एवं दीपक जैसे तेजस्वी पुरुषार्थ की क्षमता हम सबमें ओत-प्रोत हो, यही दीपयुक्त कलश का संदेश है। दीप को यज्ञ और जल कलश को गायत्री का प्रतीक माना जाता है। यह दो आधार भारतीय धर्म के उद्गम स्रोत- माता-पिता हैं। इसी से इनकी स्थापना-पूजा धर्मानुष्ठान में की जाती है। पूजन के मन्त्र बोलने के साथ-साथ कलश का पूजन किया जाए। कोई एक व्यक्ति ही प्रतिनिधि रूप में कलश पूजन करें, शेष सब लोग भावनापूर्वक हाथ जोड़ें।

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानः, तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ꣳ स, समानऽआयुः प्रमोषीः॥

- १८.४९

ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य, बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं, यज्ञ
ठं समिमं दधातु। विश्वेदेवासऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ॥
ॐ वरुणाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

- २.१३

तत्पश्चात् जल, गंध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से कलश का पूजन करें।

गन्धाक्षतं, पुष्पाणि, धूपं, दीपं, नैवेद्यं समर्पयामि।
ॐ कलशस्थ देवताभ्यो नमः।

तदुपरान्त निम्नलिखित मन्त्र से हाथ जोड़कर कलश में प्रतिष्ठित देवताओं की प्रार्थना करें।

॥ कलश प्रार्थना ॥

ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः, कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा, मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥१॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे, सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः, सामवेदो ह्यथर्वणः ॥२॥
अंगैश्च सहिताः सर्वे, कलशन्तु समाश्रिताः।
अत्र गायत्री सावित्री, शान्ति- पुष्टिकरी सदा ॥३॥
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि, त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
शिवः स्वयं त्वमेवासि, विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥४॥
आदित्या वसवो रुद्रा, विश्वेदेवाः सपैतृकाः।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि, यतः कामफलप्रदाः ॥५॥
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं, कर्तुमीहे जलोद्भव।
सान्निध्यं कुरु मे देव! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥६॥

॥ दीपपूजनम् ॥

कलश के साथ दीपक भी पूजा वेदी पर रखा जाता है । इसे सर्वव्यापी चेतना का प्रतीक मानकर पूजना चाहिए । वैज्ञानिक भी यह स्वीकार करने लगे हैं कि मूलतः चेतना से पदार्थ बना है , पदार्थ से चेतना नहीं । उस महाचेतन ज्योतिरूप, परम प्रकाश का पूजन, आराधन दीपक के माध्यम से करें ।

ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा । सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ।सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ।ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिःस्वाहा । -३.९

॥ देवावाहनम् ॥

देव शक्तियाँ-आदि शक्ति की, परब्रह्म की विभिन्न धाराएँ हैं । शरीर एक है , उसमें रक्त परिभ्रमण संस्थान, पाचन संस्थान, वायु संचार संस्थान, विचार संस्थान आदि अनेक संस्थान हैं । वे सब स्वतन्त्र हैं और आपस में जुड़े हुए भी । इसी प्रकार सृष्टि संतुलन व्यवस्था के लिए इस विराट् सत्ता की विभिन्न चेतन धाराएँ विभिन्न उत्तदायित्व सँभालती हैं । उन्हें ही देव शक्तियाँ कहा जाता है । ईश्वरेच्छा, दिव्य योजना के अनुरूप हर कार्य में उनका सहयोग अपेक्षित भी है और वह प्राप्त भी होता है । इसलिए सत्कार्यों में देव शक्तियों के आवाहन-पूजन का विधि-विधान सम्मिलित रहता है । साधकों के पुरुषार्थ के साथ वह दिव्य सहयोग भी जुड़ सके, इसके लिए श्रद्धा भाव युक्त देव पूजन किया जाता है ।

सभी उपस्थित जनों से निवेदन किया जाए कि वे पूजा में सम्मिलित रहें । पूजन कृत्य भले ही एक प्रतिनिधि करे; परन्तु देवों की प्रसन्नता सबकी भावना के संयोग के बिना नहीं पायी जा सकती है । " **भावे हि विद्यते देवाः तस्माद् भावो हि कारणम्**' के अनुसार भाव संयोग से ही पूजन में शक्ति आती है । सबका ध्यान आकर्षित करते हुए उन्हें भाव सूत्र में बाँध कर पूजन क्रम चलाया जाए । हर देवशक्ति का भाव चित्रण करके मन्त्र बोलें । मन्त्र के साथ पूजा करें , सभी भावनापूर्वक आवाहन, ध्यान एवं नमस्कार करते रहें ।

यहाँ प्रत्येक मन्त्र के पूर्व उससे सम्बद्ध देव शक्ति का स्वरूप एवं महत्त्व समझाया गया है और अन्त में आवाहन-स्थापना का निवेदन किया गया है। बड़े यज्ञों में इस क्रम को चलाने से वातावरण अधिक प्रखर और भाव भरा बनता है। यदि संक्षिप्त आयोजन है, तो उसमें संक्षिप्त हवन पद्धति के ढंग से केवल मन्त्र बोलते हुए आगे बढ़ा जा सकता है। समय और परिस्थितियाँ देखते हुए विस्तार या संक्षिप्तीकरण का निर्णय विवेकपूर्वक कर लेना चाहिए।

गुरु— परमात्मा की दिव्य चेतना का वह अंश जो साधकों का मार्गदर्शन और सहयोग करने के लिए व्यक्त होता है।

ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुरेव महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥१॥
अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥२॥ -गु० गी० ४३,४५
मातृवत् लालयित्री च, पितृवत् मार्गदर्शिका।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै, श्रद्धा-प्रज्ञायुता च या ॥३॥
ॐ श्री गुरवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

गायत्री — वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता-सद्ज्ञान, सद्भाव की अधिष्ठात्री सृष्टि की आदि कारण मातेश्वरी।

ॐ आयातु वरदे देवि ! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि।
गायत्रिच्छन्दसां मातः, ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते ॥४॥ -सं० प्र०
ॐ श्री गायत्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।
ततो नमस्कारं करोमि।
ॐ स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं, कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्। - अथर्व० १९.७१.१

* **गणेश** — विवेक के प्रतीक, विघ्नविनाशक प्रथम पूज्य—

अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं, पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै, गणाधिपतये नमः ॥५ ॥

* **गौरी** — श्रद्धा, निर्विकारिता, पवित्रता की प्रतीक मातृशक्ति —

सर्वमङ्गलमांगल्ये, शिवे सर्वार्थसाधिके ! ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥६ ॥

* **हरि** — हृदयस्थ सत् प्रेरणा के स्रोत खोलने वाले करुणानिधान —

शुक्लाम्बरधरं देवं, शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्, सर्वविघ्नोपशान्तये ॥७ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु, नास्ति तेषाममंगलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान्, मंगलायतनो हरिः ॥८ ॥

* **सप्तदेव** — सप्तलोकों एवं सप्तद्वीपा वसुन्धरा का संतुलन रखने वाली सात महाशक्तियों का युग्म —

विनायकं गुरुं भानुं, ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।
सरस्वतीं प्रणौम्यादौ, शान्तिकार्यार्थसिद्धये ॥९ ॥

* **पुण्डरीकाक्ष** — कमल जैसी निर्विकार, निर्दोष भावना एवं अन्तर्दृष्टि देने वाले भक्तवत्सल —

मंगलं भगवान् विष्णुः, मंगलं गरुडध्वजः ।
मंगलं पुण्डरीकाक्षो, मंगलायतनो हरिः ॥१० ॥

* **ब्रह्मा** — सृष्टिकर्त्ता, निर्माण की क्षमता के आदि स्रोत—

त्वं वै चतुर्मुखो ब्रह्मा, सत्यलोकपितामहः ।
आगच्छ मण्डले चास्मिन्, मम सर्वार्थसिद्धये ॥११ ॥

* **विष्णु** — पालन करने वाले, साधनों को सार्थक बनाने वाले प्रभु—

शान्ताकारं भुजगशयनं, पद्मनाभं सुरेशं,
विश्वाधारं गगनसदृशं, मेघवर्णं शुभांगम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं, योगिभिर्ध्यानगम्यं,
वन्दे विष्णुं भवभयहरं, सर्वलोकैकनाथम् ॥१२ ॥

* **शिव**— परिवर्तन, अनुशासन के सूत्रधार, कल्याण के दाता—

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं, वन्दे जगत्कारणम्,
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं, वन्दे पशूनाम्पतिम्।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं, वन्दे मुकुन्दप्रियम्,
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं, वन्दे शिवं शंकरम् ॥१३॥

***त्र्यम्बक** — बन्धन-मृत्यु से ऊपर उठाकर मुक्ति प्रदात्री सत्ता—
ॐ त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धिम्पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्, मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥१४॥

***दुर्गा**- सङ्गठन, सहकार, सत्साहस आदि की अधिष्ठात्री मातृशक्ति -
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः,
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या,
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥१५॥

***सरस्वती**— अज्ञान- नीरसता हटाने वाली, ज्ञान-कला की देवी माँ—
शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमाम्, आद्यां जगद्व्यापिनीं,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां, जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं, पद्मासने संस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं, बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥१६॥

***लक्ष्मी** — साधनों तथा धन-वैभव की अधिष्ठात्री माँ—
आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं, सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं, जातवेदो मऽ आवह ॥१७॥

***काली**-अकल्याणकारी वृत्तियों का संहार करने में समर्थ चेतना-
कालिकां तु कलातीतां, कल्याणहृदयां शिवाम्।
कल्याणजननीं नित्यं, कल्याणीं पूजयाम्यहम् ॥१८॥

***गंगा** — अपवित्रता एवं पापवृत्तियों का हरण तथा शमन करने वाली दिव्यधारा —
विष्णुपादाब्जसम्भूते, गङ्गे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवेति विख्याते, पापं मे हर जाह्नवि ॥१९॥

***तीर्थ**- मानवी अन्तःकरण में सत्प्रवृत्तियों, सदिच्छाओं का बीजारोपण एवं विकास करने में समर्थ दिव्य प्रवाह—

पुष्करादीनि तीर्थानि, गंगाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि, पूजाकाले सदा मम ॥२० ॥

* नवग्रह — विश्व की जड़-चेतन प्रकृति में तालमेल, सूत्रबद्धता प्रदान करने वाली सामर्थ्यों के प्रतीक —

ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्तकारी, भानुः शशीभूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः, सर्वेग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥

*षोडशमातृका-अन्तरंग एवं अन्तरिक्ष में विद्यमान १६ कल्याणकारी शक्तियों का युग्म —

गौरी पद्मा शची मेधा, सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा, मातरो लोकमातरः ॥२२ ॥
धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिः, आत्मनः कुलदेवता।
गणेशेनाधिका ह्येता, वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥२३ ॥

* सप्तमातृका — सात महाशक्तियाँ, जिनका नियोजन मंगल कार्यों में करने से वे माता की तरह संरक्षण देती हैं—

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा, सिद्धिः प्रज्ञा सरस्वती।
मांगल्येषु प्रपूज्याश्च, सप्तैता दिव्यमातरः ॥२४ ॥

*वास्तुदेव — वस्तुओं में अदृश्य रूप से सन्निहित चेतनाशक्ति —

नागपृष्ठसमारूढं, शूलहस्तं महाबलम्।
पातालनायकं देवं, वास्तुदेवं नमाम्यहम् ॥२५ ॥

*क्षेत्रपाल - विभिन्न क्षेत्रों में देवत्व का संचार करने वाली सूक्ष्म सत्ता-

क्षेत्रपालान्नमस्यामि, सर्वारिष्टनिवारकान्।
अस्य यागस्य सिद्ध्यर्थं, पूजयाराधितान् मया ॥२६ ॥

॥ सर्वदेवनमस्कारः ॥

देव पूजन के बाद सर्वदेव नमस्कार करना चाहिए। नमस्कार का उद्देश्य देव शक्तियों का सम्मान, उनके प्रति अपनी श्रद्धा का प्रकटीकरण तो है ही, अपने मन का, रुचि का झुकाव देवत्व की ओर करना भी है। हमारे मन में देवत्व से विपरीत अनर्थकारी आसुरी प्रवृत्तियों के प्रति भी झुकाव पैदा होता रहता है। उसे निरस्त करके पुनः कल्याणप्रद देवत्व के प्रति झुकाव-अभिरुचि

पैदा करना भी एक पुरुषार्थ है। देव नमस्कार के समय ऐसे भाव रखे जाएँ।

नमस्कार में छः देव दम्पतियों का तथा विशेष सामाजिक कर्त्तव्यों का वहन करने वाले देव तत्त्वों का सम्मान, अभिनन्दन, अभिवन्दन करते हुए मानवता के प्रति नमन-वन्दन की प्रक्रिया को पूरा किया गया है।

(१) विवेक को गणेश और उनकी पत्नी को सिद्धि-बुद्धि।(२) समृद्धि और वैभव को लक्ष्मीनारायण।(३) व्यवस्था और नियन्त्रण को उमा-महेश। (४) वाणी और भावना को वाणी- हिरण्यगर्भ। (५) कला और उल्लास को शची-पुरन्दर।(६) जन्म और पालन कर्त्री देव प्रतिमाओं को माता-पिता कहा गया है। इन छः युग्मों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने, उनकी उपयोगिता समझने-आवश्यकता अनुभव करने के लिए नमन-वन्दन किया जाए।(७) कुल देवता-अपने वंश में उत्पन्न हुए महामानव।(८) जीवन लक्ष्य को सरल बनाने वाले माध्यम-इष्ट देवता। (९) शासन-संचालक-ग्राम देवता। (१०) स्थान देवता-पंच, समाज सेवक। (११) वास्तु देवता-शिल्पी, कलाकार, वैज्ञानिक। (१२) किसी भी लोकमंगल कार्य में निरत परमार्थ परायण-सर्वदेव। (१३) आदर्श चरित्र, सद्ज्ञान, साधनारत ब्राह्मण। (१४) प्रेरणा और प्रकाश देने वाले स्थान या व्यक्ति-तीर्थ।(१५) मानवता की दिव्य चेतना-गायत्री। यह सब देव तत्त्व हुए।

ॐ सिद्धि बुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः।

ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः।

ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः।

ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः।

ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नमः।

ॐ मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः।

ॐ कुलदेवताभ्यो नमः।

ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः।

ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः।

ॐ स्थानदेवताभ्यो नमः।

ॐ वास्तुदेवताभ्यो नमः ।
ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।
ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ।
ॐ सर्वेभ्यस्तीर्थेभ्यो नमः ।
ॐ एतत्कर्म-प्रधान- श्रीगायत्रीदेव्यै नमः ।
ॐ पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु ।

॥ षोडशोपचारपूजनम् ॥

देवशक्तियों एवं अतिथियों के पूजन-सत्कार के १६ उपचार भारतीय संस्कृति में प्रचलित हैं। अपनी स्थिति तथा अतिथि के स्तर के अनुरूप स्वागत उपचारों का निर्धारण किया जाता रहा है। देव पूजन में दो बातें ध्यान रखने योग्य हैं- देवताओं को पदार्थ की आवश्यकता नहीं, इसलिए उन प्रसंगों में उपेक्षा एवं प्रमाद न बरता जाए। कोई सम्पन्न और सम्माननीय अतिथि अपने यहाँ आए तो " उन्हें क्या कमी ?" कहकर उन्हें आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने में उपेक्षा नहीं बरती जाती ।जो है उसे भावनापूर्वक, सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। ऐसी ही सावधानी देवपूजन में रखी जाए।

देवताओं को पदार्थों की भूख नहीं है, पदार्थों के समर्पण द्वारा जो भावना, श्रद्धा व्यक्त होती है, देवता उसी से सन्तुष्ट होते हैं। यह ध्यान में रखकर अच्छे पदार्थ देकर देवताओं पर एहसान का भाव नहीं आने देना चाहिए। श्रद्धा- समर्पण को प्रमुख मानकर उसे बनाये रखना आवश्यक है। अभाववश पदार्थों में कमी रह जाए, तो उसकी पूर्ति भावना द्वारा हो जाती है।

पूजन के समय एक प्रतिनिधि पूजन करे, शेष सभी व्यक्ति भावनापूर्वक कार्यक्रम को सशक्त बनाएँ। पूजन के स्थान पर एक स्वयंसेवक रहे, जो पूजा उपचार का क्रम ठीक से क्रियान्वित करा सके। एक मन्त्र बोलकर, सम्बन्धित वस्तु चढ़ाने का समय देकर ही दूसरा मन्त्र बोला जाए।

ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। आवाहयामि, स्थापयामि ॥१ ॥
आसनं समर्पयामि ॥२ ॥ पाद्यं समर्पयामि ॥३ ॥

अर्घ्यं समर्पयामि ॥४ ॥ आचमनम् समर्पयामि ॥५ ॥
स्नानम् समर्पयामि ॥६ ॥ वस्त्रम् समर्पयामि ॥७ ॥
यज्ञोपवीतम् समर्पयामि ॥८ ॥ गन्धम् विलेपयामि ॥९ ॥
अक्षतान् समर्पयामि ॥१० ॥ पुष्पाणि समर्पयामि ॥११ ॥
धूपम् आघ्रापयामि ॥१२ ॥ दीपम् दर्शयामि ॥१३ ॥
नैवेद्यं निवेदयामि ॥१४ ॥ताम्बूलपूगीफलानि समर्पयामि ॥१५
दक्षिणां समर्पयामि ॥१६ ॥सर्वाभावे अक्षतान् समर्पयामि ॥

ततो नमस्कारम् करोमि-

**ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्त्रमूर्तये, सहस्त्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्त्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्त्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥**

॥ स्वस्तिवाचनम् ॥

स्वस्ति- कल्याणकारी, हितकारी के तथा वाचन-घोषणा के अर्थों में प्रयुक्त होता है । वाणी से, उपकरणों से स्थूल जगत् में घोषणा होती है । मन्त्रों के माध्यम से सूक्ष्म जगत् में अपनी भावना का प्रवाह भेजा जाता है । सात्त्विक शक्तियाँ हमारे ईमान, हमारे कल्याणकारी भावों का प्रमाण पाकर अपने अनुग्रह के अनुकूल वातावरण पैदा करें, यह भाव रखें । अनुकूलता दो प्रकार से पैदा होती है- (१) अवांछनीयता से बचाव (२) वांछनीयता का योग ।यह अधिकार भी देवशक्तियों को सौंपते हुए स्वस्तिवाचन करना चाहिए ।

सभी लोगों को दाहिने हाथ में अक्षत, पुष्प, जल दिया जाए । बायाँ हाथ नीचे रहे । सबके कल्याण की भावनाएँ मन में रखें । मन्त्र पूरा होने पर पूजा सामग्री सबके हाथों से लेकर एक तश्तरी में इकट्ठी कर ली जाए ।

ॐ गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे, प्रियाणां त्वा प्रियपति ँ हवामहे, निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे , वसोमम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ - २३.१९

ॐ स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।२५.१९

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु , पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।। - १८.३६

ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोः, श्नप्त्रे स्थो विष्णोः, स्यूरसि
विष्णोर्ध्रुवोऽसि, वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ।। - ५.२१

ॐ अग्निर्देवता वातो देवता, सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता, वसवो
देवता रुद्रा देवता, ऽऽदित्या देवता मरुतो देवता, विश्वेदेवा देवता,
बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता, वरुणो देवता ।। -१४.२०

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः, शान्ति-
रोषधयः शान्तिः ।वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,
सर्व ँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि ।।- ३६.१७

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽ आ सुव ।
ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।।सर्वारिष्टसुशान्तिर्भवतु ।- ३०.३

।। रक्षाविधानम् ।।

जहाँ उत्कृष्ट बनने की, शुभ कार्य करने की आवश्यकता है, वहाँ यह भी आवश्यक है कि दुष्टों की दुष्प्रवृत्ति से सतर्क रहा जाए और उनसे जूझा जाए । दुष्ट प्राय: सज्जनों पर ही आक्रमण करते हैं, इसलिए नहीं कि देवतत्त्व कमजोर होते हैं, वरन् इसलिए कि वे अपने समान ही सबको सज्जन समझते हैं और दुष्टता के घात-प्रतिघातों से सावधान नहीं रहते, संगठित नहीं होते और क्षमा उदारता के नाम पर इतने ढीले हो जाते हैं कि अनीति से लड़ने का साहस, शौर्य और पराक्रम ही उनमें से चला जाता है । इससे लाभ अनाचारी तत्त्व उठाते हैं । यज्ञ जैसे सत्कर्मों की अभिवृद्धि से ऐसा वातावरण बनता है, जिसकी प्रखरता से असुरता के पैर टिकने ही न पाएँ । इस आशंका में असुर-प्रकृति के विघ्न सन्तोषी लोग ही ऐसे षड्यन्त्र रचते हैं, जिसके कारण शुभ कर्म सफल न होने पाएँ ।

इस स्थिति से भी धर्मपरायण व्यक्ति को परिचित रहना चाहिए और

संयम- उदारता, सत्य-न्याय जैसे आदर्शों को अपनाने के साथ-साथ ऐसी वैयक्तिक और सामूहिक सामर्थ्य इकट्ठी करनी चाहिए, जिससे दुष्टता को निरस्त किया जा सके। इसी सतर्कता और तत्परता का नाम रक्षा विधान है। दसों दिशाओं में विघ्नकारी हो सकते हैं, उनकी ओर दृष्टि रखने, उन पर प्रहार करने की तैयारी के रूप में सब दिशाओं में मंत्र-पूरित अक्षत फेंके जाते हैं। भगवान् से उन दुष्टों से लड़ने की शक्ति की याचना भी इस क्रिया-कृत्य में सम्मिलित है। बायें हाथ में अक्षत रखें, जिस दिशा की रक्षा का मंत्र बोला जाए, उसी ओर अक्षत फेंके।

ॐ पूर्वे रक्षतु वाराहः, आग्नेय्यां गरुडध्वजः।
दक्षिणे पद्मनाभस्तु, नैर्ऋत्यां मधुसूदनः ॥१॥
पश्चिमे चैव गोविन्दो, वायव्यां तु जनार्दनः।
उत्तरे श्रीपती रक्षेद्, ऐशान्यां हि महेश्वरः ॥२॥
ऊर्ध्वं रक्षतु धाता वो, ह्यधोऽनन्तश्च रक्षतु।
अनुक्तमपि यत् स्थानं, रक्षत्वीशो ममाद्रिधृक् ॥३॥
अपसर्पन्तु ते भूता, ये भूता भूमिसंस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारः, ते गच्छन्तु शिवाज्ञया ॥४॥
अपक्रामन्तु भूतानि, पिशाचाः सर्वतो दिशम्।
सर्वेषामविरोधेन, यज्ञकर्म समारभे ॥५॥

॥अग्निस्थापनम्॥

यज्ञाग्नि को ब्रह्म का प्रतिनिधि मानकर वेदी पर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करते हैं। उसी भाव से अग्नि की स्थापना का विधान सम्पन्न करते हैं। जब कुण्ड में प्रथम अग्नि-ज्योति के दर्शन हों, तब सब लोग उन्हें नमस्कार करें।

अग्नि स्थापना से पूर्व कुण्ड में समिधाएँ इस कुशलता से चिननी चाहिए कि अग्नि प्रदीप्त होने में बाधा न पड़े। अग्नि के ऊपर पतली सूखी लकड़ी रखी जायें, ताकि अग्नि का प्रवेश जल्दी हो सके। एक चम्मच में कपूर अथवा घी में भीगी हुई रुई की मोटी बत्ती रखी जाए, उसमें अग्नि जलाकर स्थापित किया जाए। ऊपर पतली लकड़ी लगाने से अग्नि प्रवेश में सुविधा होती है।

ॐ भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना, पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि, पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे। अग्निं दूतं पुरोदधे, हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँऽआसादयादिह। - ३.५, २२.१७

ॐ अग्नये नमः ।आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

तदुपरान्त गन्ध, अक्षत- पुष्प आदि से अग्निदेवता की पूजा करें—

गन्धाक्षतम्, पुष्पाणि, धूपम्, दीपम्, नैवेद्यम् समर्पयामि।

॥ गायत्री स्तवनम् ॥

इस स्तवन (आ०हृ०स्तो०) में गायत्री महामन्त्र के अधिष्ठाता सविता- देवता की प्रार्थना है। इसे अग्नि का अभिवन्दन, अभिनन्दन भी कह सकते हैं। सभी लोग हाथ जोड़कर स्तवन की मूल भावना को हृदयंगम करें। हर टेक में कहा गया है- 'वह वरण करने योग्य सविता देवता हमें पवित्र करे।' दिव्यता- पवित्रता के संचार की पुलकन का अनुभव करते चलें।

यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालम्, रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम्।
दारिद्र्य-दुःखक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥१॥

शुभ ज्योति के पुंज, अनादि, अनुपम। ब्रह्माण्ड व्यापी आलोक कर्त्ता।
दारिद्र्य, दुःख भय से मुक्त कर दो।पावन बना दो हे देव सविता॥१॥

यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितम्, विप्रैः स्तुतं मानवमुक्तिकोविदम्।
तं देवदेवं प्रणमामि भर्गं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥२॥

ऋषि देवताओं से नित्य पूजित। हे भर्ग! भव बन्धन-मुक्ति कर्त्ता।
स्वीकार कर लो वंदन हमारा। पावन बना दो हे देव सविता॥२॥

यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं, त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम्।
समस्त- तेजोमय- दिव्यरूपं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥३॥

हे ज्ञान के घन, त्रैलोक्य पूजित। पावन गुणों के विस्तार कर्त्ता।
समस्त प्रतिभा के आदि कारण। पावन बना दो हे देव सविता॥३॥

यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं, धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम्।
यत् सर्वपापक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।४ ।।
हे गूढ़ अन्तःकरण में विराजित। तुम दोष-पापादि संहार कर्त्ता।
शुभ धर्म का बोध हमको करा दो। पावन बना दो हे देव सविता ।।४ ।।

यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं, यदृग्- यजुः-सामसु सम्प्रगीतम्।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।५ ।।
हे व्याधि- नाशक, हे पुष्टि दाता। ऋग् साम, यजु वेद संचार कर्त्ता ।।
हे भूर्भुवः स्वः में स्व प्रकाशित। पावन बना दो हे देव सविता ।।५ ।।

यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति, गायन्ति यच्चारण- सिद्धसङ्घाः।
यद्योगिनो योगजुषां च सङ्घाः, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।६ ।।
सब वेदविद् चारण, सिद्ध योगी। जिसके सदा से हैं गान कर्त्ता ।।
हे सिद्ध सन्तों के लक्ष्य शाश्वत। पावन बना दो हे देव सविता ।।६ ।।

यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं, ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके।
यत्काल-कालादिमनादिरूपम्, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।७ ।
हे विश्व मानव से आदि पूजित। नश्वर जगत् में शुभ ज्योति कर्त्ता ।।
हे काल के काल-अनादि ईश्वर। पावन बना दो हे देव सविता ।।७ ।।

यन्मण्डलं विष्णुचतुर्मुखास्यं, यदक्षरं पापहरं जनानाम्।
यत्कालकल्पक्षयकारणं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।८ ।।
हे विष्णु ब्रह्मादि द्वारा प्रचारित। हे भक्त पालक, हे पाप हर्त्ता ।।
हे काल-कल्पादि के आदि स्वामी। पावन बना दो हे देव सविता ।।८ ।।

यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धं, उत्पत्ति-रक्षा-प्रलयप्रगल्भम्।
यस्मिन् जगत्संहरतेऽखिलं च, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।९ ।।
हे विश्व मण्डल के आदि कारण। उत्पत्ति-पालन-संहार कर्त्ता ।।
होता तुम्हीं में लय यह जगत् सब।पावन बना दो हे देव सविता ।।९ ।।

यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोः, आत्मा परंधाम- विशुद्धतत्त्वम्।
सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ।।१० ।।

हे सर्वव्यापी, प्रेरक नियन्ता। विशुद्ध आत्मा, कल्याण कर्त्ता।
शुभ योग पथ पर हमको चलाओ। पावन बना दो हे देव सविता ॥१० ॥

यन्मण्डलं ब्रह्मविदो वदन्ति, गायन्ति यच्चारण-सिद्धसंघाः।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥११ ॥

हे ब्रह्मनिष्ठों से आदि पूजित। वेदज्ञ जिसके गुणगान कर्त्ता॥
सद्भावना हम सब में जगा दो। पावन बना दो हे देव सविता।११ ॥

यन्मण्डलं वेद- विदोपगीतं, यद्योगिनां योगपथानुगम्यम्।
तत्सर्ववेदं प्रणमामि दिव्यं, पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम्॥१२ ॥

हे योगियों के शुभ मार्गदर्शक। सद्ज्ञान के आदि संचारकर्त्ता।
प्रणिपात स्वीकार लो हम सभी का।पावन बना दो हे देव सविता॥१२ ॥

॥अग्नि प्रदीपनम्॥

जलती हुई प्रदीप्त अग्नि में ही आहुति दी जाती है। पंखे से हवा करके समिधाओं में सुलगती हुई अग्नि को प्रदीप्त करते हैं। धुएँ वाली अधजली आग में आहुतियाँ नहीं दी जातीं।

जीवन दीप्तिमान्, ज्वलनशील, प्रचण्ड, प्रखर और प्रकाशमान जिया जाना चाहिए, चाहे थोड़े ही दिन का क्यों न हो। धुआँ निकालती हुई आग एक वर्ष जले, इसकी अपेक्षा एक क्षण का प्रकाशयुक्त ज्वलन अच्छा। अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत् करने की प्रेरणा इस अग्नि प्रदीपन में है।

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि, त्वमिष्टा पूर्ते स ꣳ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्, विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।

-१५.५४,१८.६१

॥ समिधाधानम्॥

यज्ञपुरुष अग्निदेव के प्रकट होने पर पतली छोटी चार समिधाएँ घी में डुबोकर एक-एक करके चार मंत्रों के साथ चार बार में समर्पित की जाएँ।

ये चार समिधाएँ चार तथ्यों को अग्निदेव की साक्षी में स्मरण करने के लिए चढ़ाई जाती हैं। (१) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास की व्यवस्था

को पूर्ण करना। (२) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करा सकने वाला जीवनक्रम अपनाना। (३) साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा-इन चारों का अवलम्बन। (४) शरीरबल, मनोबल, आत्मबल, ब्रह्मबल-इन चारों विभूतियों के लिए प्रबल-पुरुषार्थ। इन चारों उपलब्धियों को यज्ञ-रूप बनाना, यज्ञ के लिए समर्पित करना चार समिधाओं का प्रयोजन है। इस लक्ष्य को चार समिधाओं द्वारा स्मृतिपटल पर अङ्कित किया जाता है। स्नेहसिक्त, चिकना, लचीला, सरल अपना व्यक्तित्व हो, यह प्रेरणा प्राप्त करने के लिए स्नेह-घृत में डुबोकर चार समिधाएँ अर्पित की जाती हैं। भावना की जाए कि घृतयुक्त समिधाओं से जिस प्रकार अग्नि प्रदीप्त होती है, उसी प्रकार उपर्युक्त क्षमताएँ अपने संकल्प और देव अनुग्रह के संयोग से साधकों को प्राप्त हो रही हैं।

समिधाधान वह करता है, जो घी की आहुति देने के लिए मध्य में बैठता है। जल प्रसेचन तथा आज्याहुति की सात घृत आहुतियाँ भी वही देता है।

१-ॐ अयन्त इध्म आत्मा, जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व। चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया, पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, अन्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदं अग्नये जातवेदसे इदं न मम। -आश्व० गृ० सू० १.१०

२-ॐ समिधाऽग्निं दुवस्यत, घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदं अग्नये इदं न मम॥

३-ॐ सुसमिद्धाय शोचिषे, घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदं अग्नये जातवेदसे इदं न मम॥

४- ॐ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो, घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा। इदं अग्नये अंगिरसे इदं न मम॥ - ३.१-३

॥ जलप्रसेचनम् ॥

अग्नि और जल का युग्म है। यज्ञ अग्नि और गायत्री जल है। इन्हें ज्ञान और कर्म भी कह सकते हैं। इस युग्म को- (१) तेजस्विता-मधुरता (२) पुरुषार्थ-संतोष (३) उपार्जन-त्याग (४) क्रान्ति-शान्ति भी कह सकते हैं।

प्रोक्षणी पात्र (बिना हत्थे वाला चम्मच जैसा उपकरण) में पानी लेकर

निम्न मंत्रों से वेदी के बाहर चारों दिशाओं में डालें ।भावना करें कि अग्नि के चारों ओर शीतलता का घेरा बना रहे हैं । जिसका परिणाम शान्तिदायी होगा ।

ॐ अदितेऽनुमन्यस्व ।। (इति पूर्वे)

ॐ अनुमतेऽनुमन्यस्व ।। (इति पश्चिमे)

ॐ सरस्वत्यनुमन्यस्व ।। (इति उत्तरे) -गो० गृ० सू० १.३.१-३

ॐ देव सवितः प्रसुव यज्ञं, प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः , केतं नः पुनातु , वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।(इति चतुर्दिक्षु)

-११.७

।। आज्याहुतिः ।।

सर्वप्रथम सात मंत्रों से सात आहुतियाँ केवल घृत की दी जाती हैं । इन आहुतियों के साथ हवन सामग्री नहीं होमी जाती । घी पिघला हुआ रहे । स्रुवा को घी में डुबाने के बाद उसका पैंदा घृत पात्र के किनारे से पोंछ लेना चाहिए, ताकि घी जमीन पर न टपके । स्वाहा उच्चारण के साथ ही आहुति दी जाए । स्रुवा लौटाते समय घृत पात्र के समीप ही रखे हुए, जल भरे प्रणीता पात्र में बचे हुए घृत की एक बूँद टपका देनी चाहिए ।

घृत का दूसरा नाम स्नेह है । स्नेह अर्थात् प्रेम, सहानुभूति, सेवा, संवेदना, दया, ममता, आत्मीयता, करुणा, उदारता, वात्सल्य जैसे सद्गुण इस प्रेम-अभिव्यक्ति के साथ जुड़े हुए हैं । निःस्वार्थ भाव से उच्च आदर्शों के साथ साधना सम्पन्न की जाती है, उसे दिव्य प्रेम कहते हैं । यह दिव्य प्रेम, स्नेह- घृत यदि यज्ञ -परमार्थ के साथ जोड़ दिया जाए, तो वह देवताओं को प्रसन्न करने वाला बन जाता है । वही शिक्षण इन सात घृत आहुतियों में है । सच्चे प्रेम पात्र सात ही हैं । इन सातों को ईश्वररूपी सूर्य की सात किरणें कह सकते हैं । यही ब्रह्म-आदित्य के सात अश्व हैं । (१) प्रजापति-परमेश्वर (२) इन्द्र-आत्मा (३) अग्नि-वैभव (४) सोम-शान्ति (५) भूः-शरीर (६) भुवः-मन (७) स्वः-अन्तःकरण । इन सात देवताओं को सच्चे मन से प्यार करना चाहिए अर्थात् इनके परिष्कार, अभिवर्धन के लिए सतत प्रयत्न करना चाहिए । यही सब देवताओं को दी गई सात आहुतियों का प्रयोजन है ।

१- ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदं न मम ॥-१८.२८
२- ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय इदं न मम ॥
३- ॐ अग्नये स्वाहा । इदं अग्नये इदं न मम ॥
४- ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदं न मम ॥-२२.२७
५- ॐ भूः स्वाहा। इदं अग्नये इदं न मम ॥
६- ॐ भुवः स्वाहा। इदं वायवे इदं न मम ॥
७- ॐ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय इदं न मम ॥-गो० गृ० सू० १८.१५

॥ गायत्रीमन्त्राहुतिः ॥

गायत्री मंत्र की जितनी आहुतियाँ देनी हों, उसी अनुपात से सामग्री, घी, समिधा आदि की व्यवस्था पहले से ही कर लेनी चाहिए। मध्यमा और अनामिका अँगुलियों पर सामग्री रखी जाए।अँगूठे का सहारा देकर उसे आगे खिसकाने का प्रयोजन पूरा करना चाहिए। आहुति देने वाले सभी लोग साथ-साथ मंत्र बोलें। 'स्वाहा' शब्द उच्चारण के साथ-साथ थोड़ा आगे हाथ बढ़ाकर आहुतियाँ डालें, जिससे सामग्री अग्नि में ही गिरे, इधर-उधर न बिखरे। आहुति एक साथ छोड़ें और हथेली ऊपर की दिशा में ही रहे।आहुति डालने के बाद **"इदं गायत्र्यै इदं न मम"** का उच्चारण किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि यह यज्ञानुष्ठान पुण्य-परमार्थ अपने स्वार्थ साधन के लिए नहीं, लोकमंगल के लिए किया गया है।जिस प्रकार अति सम्माननीय अतिथि को प्रेमपूर्वक भोजन परोसा जाता है, उसी प्रकार श्रद्धा-भक्ति और सम्मान की भावना के साथ अग्निदेव के मुख में आहुति दी जानी चाहिए, लोक कल्याण के लिए श्रम, तप, त्याग किया जा रहा है ।जैसे अग्नि के स्पर्श से लकड़ी अग्नि रूप हो जाती है, उसी तरह यज्ञ पुरुष के सान्निध्य में आकर आहुति देते हुए जीवन को यज्ञमय बनाने का प्रयास किया जा रहा है। इन भावनाओं के साथ आहुतियाँ दी जानी चाहिए।गायत्री मंत्र से २४ आहुतियाँ देनी चाहिए।समयानुसार संख्या को न्यूनाधिक किया जा सकता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा। इदं गायत्र्यै इदं न मम।- ३६.३

॥ स्विष्टकृत्होमः ॥

यह प्रायश्चित्त आहुति भी कहलाती है। आहुतियों में जो कुछ भूल रही हो, उसकी पूर्ति के लिए यज्ञाग्नि के लिए नैवेद्य समर्पण के रूप में यह कृत्य किया जाता है। स्विष्टकृत् आहुति में मिष्टान्न समर्पित किया जाता है। मिष्टान्न का संकेत है सर्वाङ्गीण मधुरता। वाणी से मधुर-वचन, व्यवहार में मधुर शिष्टाचार, मन में सबके लिए मधुर संवेदनाएँ, हँसता-हँसाता हलका-फुलका मधुर स्वभाव यह मधुर मिष्टान्न का प्रतीक देवताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। अपना व्यक्तित्व मधुरतायुक्त विशेषताओं से ढला हुआ हो। हम मधुर बनकर भगवान् की सेवा में प्रस्तुत होते हैं। यह स्विष्टकृत् आहुति का प्रयोजन है।

स्रुचि (चम्मच जैसा, लम्बी डण्डी वाला काष्ठ पात्र) में मिष्टान्न और घी भरकर इसे केवल घी होमने वाला ही देता है। आरम्भ और अन्त में कुछ विशेष कृत्य घृत होमने वाले व्यक्ति को करने पड़ते हैं। यह सब वह अपने अन्य साथियों के प्रतिनिधि के रूप में करता है। स्विष्टकृत् आहुति अपने स्थान पर बैठे हुए करें।

ॐ यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं, यद्वान्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते, सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां, समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदम् अग्नये स्विष्टकृते इदं न मम॥

-आश्व गृ० सू० १.१०

॥ देवदक्षिणा-पूर्णाहुतिः ॥

मनुष्य की गरिमा इस बात में है कि जो श्रेष्ठ सङ्कल्प करे, उसे पूर्णता तक पहुँचाए। मनुष्य अपूर्ण है। उसे अपनी पूर्णता के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यज्ञीय जीवन में रुचि रखने वाले आदर्शवादियों को अग्नि की साक्षी में यह व्रत लेना चाहिए कि पूर्णता की दिशा में निरन्तर अग्रसर रहेंगे और लक्ष्य को प्राप्त करके ही चैन लेंगे। मनुष्य से अपेक्षा की जाती है कि

वह पशुता की ओर न बढ़े, हीन प्रवृत्तियों से बचे तथा देवत्व की दिशा में बढ़े। यज्ञ से देवत्व की प्राप्ति होती है। यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा का, यज्ञ भगवान् के आशीर्वाद का उपयोग हीन प्रवृत्तियों के विनाश के लिए करना चाहिए। इसके लिए अपने किसी दोष-दुर्गुण के त्याग तथा किसी सद्‌गुण को अपनाने का संकल्प मन में करना चाहिए। देवशक्तियाँ श्रेष्ठ संकल्पों को पूरा करने के लिए विशेष आशीर्वाद एवं शक्ति प्रदान करती हैं। पूर्णाहुति के साथ देव शक्तियों के सामने अपने सुनिश्चित संकल्प घोषित करते हुए उनकी पूर्ति की प्रार्थना सहित पूर्णाहुति सम्पन्न करनी चाहिए।

देव दक्षिणा के संदर्भ में छोड़े जाने वाले दोषों एवं अपनाये जाने योग्य गुणों, नियमों का उल्लेख समय एवं परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है। उनकी सूची आगे दी गई है।

सब लोग खड़े हों। सबके हाथ में एक-एक चुटकी सामग्री हो। घृत होमने वाले स्रुचि में सुपारी अथवा नारियल का गोला तथा घृत लें, स्वाहा के साथ आहुति दें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ पूर्णादर्वि परापत, सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणा वहा, इषमूर्ज ँ शतक्रतो स्वाहा॥
ॐ सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा। - बृह० उ० ५.१.१; यजु० ३.४९

॥ वसोर्धारा ॥

घृत की अन्तिम बड़ी आहुति वसोर्धारा अर्थात् स्नेह सौजन्य। प्रारम्भ में घृत की सात आहुतियाँ दी थीं। उस प्रारम्भ का अन्त और भी बढ़ा-चढ़ा होना चाहिए। वसोर्धारा में घृत की अविच्छिन्न धारा टपकाई जाती है और अधिक घृत होमा जाता है। कार्य के प्रारम्भ में जितना उत्साह एवं त्याग हो, अन्त में उससे भी अधिक होना चाहिए। अक्सर शुभ कार्यों के प्रारम्भ में सब लोग बहुत साहस, उत्साह दिखाते हैं, पर पीछे ठण्डे पड़ जाते हैं। मनस्वी लोगों की नीति दूसरी ही है। वे यदि धर्म मार्ग पर कदम बढ़ा देते हैं, तो हर

कदम पर अधिक तेजी का परिचय देते हैं और अन्तत: उसी में-याज्ञिक कर्म में तन्मय हो जाते हैं । भावना करें कि यज्ञ भगवान् सत्कृत्यों में अविरल स्नेह की धार चढ़ाने की प्रवृत्ति और क्षमता हमें प्रदान करें ।

ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं, वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः, पवित्रेण शतधारेण सुप्वा,
कामधुक्षः स्वाहा । - १.३

।। नीराजनम् - आरती ।।

आरती उतारने का तात्पर्य है कि यज्ञ भगवान् का सम्मान, परमार्थ परायणता का ज्ञान प्रकाश दसों दिशाओं में फैले, सर्वत्र उसी का शंख बजे, घण्टा-निनाद सुनाई पड़े और हर धर्मप्रेमी इस प्रयोजन के लिए उठ खड़ा हो । आरती में पैसे चढ़ाये जाते हैं अर्थात् ऐसे प्रयोजन के लिए सहयोग का परिचय दिया जाता है । यज्ञ भगवान् की आरती-प्रतिष्ठा ज्ञान दीपों के प्रकाश- विस्तार से ही सम्भव है । यज्ञीय परम्परा इस अनुष्ठान तक ही सीमित न रहे; वरन् उसके विस्तार की व्यवस्था भी यज्ञप्रेमी करेंगे, इसी कर्त्तव्य का उद्घाटन प्रतीक रूप से आरती में किया जाता है । थाली में पुष्पादि से सजाकर आरती जलाएँ, तीन बार जल घुमाकर यज्ञ भगवान् व देव प्रतिमाओं की आरती उतारें, पुन: तीन बार जल घुमाकर उपस्थित जनों तक आरती पहुँचा दें । यह सारा कृत्य एक प्रतिनिधि करे, आवश्यकतानुसार आरती की संख्या बढ़ाई जा सकती है ।

ॐ यं ब्रह्मवेदान्तविदो वदन्ति, परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये ।
विश्वोद्गतेः कारणमीश्वरं वा, तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ।।
ॐ यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः , स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः,
वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैः, गायन्ति यं सामगाः ।।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा, पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः , देवाय तस्मै नमः ।।

॥ घृतावघ्राणम् ॥

घृत आहुतियों से बचने पर टपकाया हुआ घृत, जल भरे प्रणीता पात्र में जमा रहता है। इसे थाली में रखकर सभी उपस्थित लोगों को दिया जाए। इस जल मिश्रित घृत में दाहिने हाथ की अँगुलियों के अग्रभाग को डुबोते जाएँ और दोनों हथेलियों पर मल लिया जाए। मंत्र बोलते समय दोनों हाथ यज्ञ कुण्ड की ओर इस तरह रखें, मानों उन्हें तपाया जा रहा हो। यज्ञीय वातावरण एवं संदेश को मस्तिष्क में भर लेने, आँखों में समा लेने, कानों में गुँजाते रहने, मुख से चर्चा करते रहने और उसी दिव्य गन्ध को सूँघते रहने, वैसे ही भाव-भरा वातावरण बनाये रखने की सामर्थ्य पाने की इच्छा रखने वालों को यज्ञ भगवान् का प्रसाद घृत अवघ्राण से प्राप्त होता है।

ॐ तनूपा अग्नेऽसि, तन्वं मे पाहि।
ॐ आयुर्दा अग्नेऽसि, आयुर्मे देहि॥
ॐ वर्चोदा अग्नेऽसि, वर्चो मे देहि।
ॐ अग्ने यन्मे तन्वाऽ, ऊनन्तन्मऽआपृण॥
ॐ मेधां मे देवः, सविता आदधातु।
ॐ मेधां मे देवी, सरस्वती आदधातु॥
ॐ मेधां मे अश्विनौ, देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ।

- पा० गृ० सू० २.४.७-८

॥ भस्मधारणम् ॥

जीवन का अन्त भस्म की ढेरी के रूप में होता है। मुट्ठी भर भस्म बनकर हवा में उड़ जाने वाले अकिंचन मनुष्य का लोभ, मोह, अहंकार में निरत रहना कितना मूर्खतापूर्ण है। इस दूरगामी किन्तु नितान्त सत्य स्थिति को यदि वह समझ सका होता, तो उसने अपनी गतिविधियों का निर्धारण ऐसे आधारों पर किया होता, जिसे सुरदुर्लभ मानव जीवन व्यर्थ और अनर्थ जैसे कार्यों में गँवा देने का पश्चात्ताप न करना पड़ता। मृत्यु कभी भी आ

सकती है और इस सुन्दर कलेवर को देखते-देखते भस्म की ढेरी बना सकती है। यह बात मस्तिष्क में भली प्रकार बिठा लेने के लिए यज्ञ भस्म मस्तक पर लगाई जाती है। इस भस्म को मस्तक, कण्ठ, भुजा तथा हृदय पर भी लगाते हैं, मस्तक अर्थात् ज्ञान, कण्ठ अर्थात् वचन, भुजा अर्थात् कर्म। मन, वचन, कर्म से हम ऐसे विवेकयुक्त कर्म करें, जो जीवन को सार्थक कृतकृत्य बनाने वाले सिद्ध हों।

स्रुव की पीठ पर भस्म लगा ली जाती है और सभी लोग अनामिका अँगुली में लेकर मन्त्र में बताये हुए स्थानों पर क्रमशः लगाते हैं।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः, इति ललाटे।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्, इति ग्रीवायाम्।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्, इति दक्षिणबाहुमूले।

ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्, इति हृदि। - ३.६२

॥ क्षमा प्रार्थना ॥

अपने दोषों को देखते रहना, जिनके साथ कुछ अनुचित या अप्रिय व्यवहार बन पड़ा हो, उनके मनोमालिन्य को दूर करना, जिसको हानि पहुँचाई हो, उसकी क्षतिपूर्ति करना, यह सज्जनता का लक्षण है। यज्ञ कार्य के विधि-विधान में कोई त्रुटि रह सकती है, इसके लिए देव-शक्तियों एवं व्यक्तियों से क्षमा याचना कर लेने से जहाँ अपना जी हल्का होता है, वहाँ सामने वाले की अप्रसन्नता भी दूर हो जाती है। यह आत्मनिरीक्षण, आत्मशोधन की दूसरों के प्रति उदात्त दृष्टि रखने की सज्जनोचित प्रक्रिया है। यज्ञ के अवसर पर इस प्रक्रिया को अपनाये रहने के लिए क्षमा प्रार्थना का विधान यज्ञ आयोजन के अन्त में रहता है। सब लोग हाथ जोड़कर खड़े होकर मन्त्रोच्चारण करें, साथ ही उस स्तर के भाव मन में भरे रहें।

ॐ आवाहनं न जानामि, नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि, क्षमस्व परमेश्वर! ॥१॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं, भक्तिहीनं सुरेश्वर!
यत्पूजितं मया देव! परिपूर्णं तदस्तु मे ॥२॥

यदक्षरपदभ्रष्टं, मात्राहीनं च यद् भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव ! प्रसीद परमेश्वर ! ॥३॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या, तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति, सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥४॥
प्रमादात्कुर्वतां कर्म, प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः, सम्पूर्णं स्यादितिश्रुतिः ॥५॥

॥ साष्टांगनमस्कारः ॥

सर्वव्यापी विराट् ब्रह्म को-विश्व ब्रह्माण्ड को भगवान् का दृश्य रूप मानकर "सिया राम मय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि-जुग पानी॥" की भावना से घुटने टेककर भूमि में मस्तक लगाकर देव शक्तियों को, महामानवों को भाव विभोर होकर अभिवन्दन-नमस्कार किया जाता है। उनके चरणों में अपने को समर्पित करने अर्थात् अनुगमन करने का संकल्प, आश्वासन व्यक्त किया जाता है। यही भूमि- प्रणिपात साष्टांग नमस्कार है।

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः॥

॥ शुभकामना ॥

यह शुभकामना मन्त्र भी सबके कल्याण की अभिव्यक्ति के लिए है। हमारे मन में किसी के प्रति द्वेष न हो, अशुभ चिन्तन किसी के लिए भी न करें। जिनसे सम्बन्ध कटु हो गये हों, उनके लिए भी हमें मङ्गल-कामना ही करनी चाहिए। द्वेष-दुर्भाव किसी के लिए भी नहीं करना चाहिए। सबके कल्याण में अपना कल्याण समाया हुआ है, परमार्थ में स्वार्थ जुड़ा हुआ है- यह मान्यता रखते हुए हमें सर्वमङ्गल की-लोककल्याण की आकांक्षा रखनी चाहिए। शुभ कामनाएँ इसी की अभिव्यक्ति के लिए हैं।

सब लोग दोनों हाथ पसारें। इन्हें याचना मुद्रा में मिला हुआ रखें। मन्त्रोच्चार के साथ-साथ इन्हीं भावनाओं से मन को भरे रहें।

ॐ स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां, न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं, लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥
सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥२ ॥
श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां, विद्यां पुष्टिं श्रियं बलम् ।
तेज आयुष्यमारोग्यं, देहि मे हव्यवाहन ! ॥३ ॥- लौगा॰ स्मृ॰

॥ पुष्पांजलिः ॥

यह विदाई सत्कार है। पुरुष सूक्त के मंत्रों को आरम्भ करके देव आगमन पर उनका आतिथ्य, स्वागत-सत्कार किया गया था। यह विदाई सत्कार मंत्र पुष्पांजलि के रूप में किया जाता है।

सब लोग हाथ में पुष्प अथवा चन्दन-केशर से रँगे हुए पीले चावल लेते हैं। पुष्पांजलि मंत्र बोला जाता है और पुष्प वर्षा की तरह ही उसे देव शक्तियों पर बरसा दिया जाता है। पुष्पहार, गुलदस्ता आदि भी प्रस्तुत किया जा सकता है। पुष्प भावभरी सहज श्रद्धा के प्रतीक माने जाते हैं। उन्हें अर्पित करने का तात्पर्य है, अपनी सम्मान भावना की अभिव्यक्ति।

इस विश्व में असुरता और देवत्व के दो ही वर्ग अन्धकार और प्रकाश के रूप में हैं। इन्हीं को स्वार्थ और परमार्थ-निकृष्टता और उत्कृष्टता कहते हैं। दोनों में से एक को प्रधान दूसरे को गौण रखना पड़ता है। यदि भोगवादी असुरता प्रिय होगी, तो मोह, लोभ, अहङ्कार, तृष्णा, वासना में रुचि रहेगी और उन्हीं के लिए निरन्तर मरते-खपते रहा जाएगा। फिर जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए सत्कर्म करने की न इच्छा होगी और न अवसर मिलेगा; परन्तु यदि लक्ष्य देवत्व हो, तो शरीर को निर्वाह भर के और परिवार को उचित आवश्यकता पूरी करने भर के साधन जुटाने के उपरान्त उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व के लिए मस्तिष्क में पर्याप्त स्थान और शरीर को पर्याप्त अवसर मिल सकता है। देवत्व का मार्ग उत्थान का और असुरता का मार्ग कष्ट-क्लेशों से भरे पतन का है। दोनों में से किसे चुना? किससे मैत्री स्थापित की? किसे लक्ष्य बनाया? इसका उत्तर पुष्पांजलि के अवसर पर

दिया जाता है। विदाई के अवसर पर भावभरी श्रद्धांजलि अर्पित करना मानो यह कहना है कि हमें देवत्व प्रिय है, हम ने उसी को लक्ष्य चुना है और उसी मार्ग पर चलेंगे।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
ॐ मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥ - ३१.१६

॥ शान्ति - अभिषिंचनम् ॥

यज्ञशाला के दिव्य वातावरण में रखा हुआ जल कलश अपने भीतर उन मंगलकारक दिव्य तत्त्वों को धारण कर लेता है, जो मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति एवं आत्मिक गरिमा की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं। जल कलश से पुष्प द्वारा सभी उपस्थित लोगों पर अभिषिंचन के साथ यह भावना रखें कि यज्ञ की भौतिक एवं आत्मिक उपलब्धियाँ इस जल के माध्यम से उपस्थित लोगों को प्राप्त हो रही हैं और वे असत् से सत् की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ेंगे।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः, पृथिवी शान्तिरापः, शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः, सर्व ँ शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि ॥ ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः । - ३६.१७
सर्वारिष्ट-सुशान्तिर्भवतु ॥

॥ सूर्यार्घ्यदानम् ॥

सूर्यार्घ्यदान हर उपासनात्मक कृत्य के बाद किया जाता है, जल का स्वभाव अधोगामी है, वही सूर्य की ऊष्मा के संसर्ग से ऊर्ध्वगामी बनता है, असीम में विचरण करता है। साधक भावना करता है-हमारी हीन वृत्तियाँ-सविता देव के संसर्ग से ऊर्ध्वगामी बनें, विराट् में फैलें, सीमित जीव, चंचल जीवन-असीम अविचल ब्रह्म से जुड़े, यही है सूर्यार्घ्यदान की भावना।

सूर्य की ओर मुख करके कलश का जल धीरे-धीरे धार बाँधकर

छोड़ना चाहिए । किसी थाल को नीचे रखकर यह अर्घ्य जल उसी में इकट्ठा कर लिया जाए और फिर किसी पावन स्थान पर उसका विसर्जन किया जाए ।

ॐ सूर्यदेव ! सहस्रांशो, तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥
ॐ सूर्याय नमः, आदित्याय नमः, भास्कराय नमः ॥

॥ प्रदक्षिणा ॥

अब तक बैठकर मन, वचन से ही मन्त्रोच्चार किया जाता रहा । हाथों का ही प्रयोग हुआ । अब यज्ञ मार्ग पर चलना शेष है । इसी पर तो भावना के परिष्कार की, यज्ञ प्रक्रिया की सफलता निर्भर है । अब यह कर्मयात्रा आरम्भ होती है । यज्ञ अनुष्ठान में जिस दिशा में चलने का संकेत है, प्रदक्षिणा में उसी दिशा में चलना आरम्भ किया जाता है । कार्य के चार चरण हैं— (१) संकल्प, (२) प्रारम्भ, (३) पुरुषार्थ, (४) तन्मयता । इन चार प्रक्रियाओं से समन्वित जो भी कार्य किया जाएगा, वह अवश्य सफल होगा । यज्ञमय जीवन जीने के लिए चार कदम बढ़ाने, चार अध्याय पूरे करने का पूर्वाभ्यास-प्रदर्शन किया गया । एकता, समता, ममता, शुचिता चारों लक्ष्य पूरे करने के लिए साधना, स्वाध्याय, सेवा और संयम की गतिविधियाँ अपनाने के लिए चार परिक्रमाएँ हैं । हम इस मार्ग पर चलें, यह संकल्प प्रदक्षिणा के अवसर पर हृदयंगम किया जाना चाहिए और उस पथ पर निरन्तर चलते रहना चाहिए ।

सब लोग दायें हाथ की ओर घूमते हुए यज्ञशाला की परिक्रमा करें, स्थान कम हो, तो अपने स्थान पर खड़े रहकर चारों दिशाओं में घूमकर एक परिक्रमा करने से भी काम चल जाता है ।

परिक्रमा करते हुए दोनों हाथ जोड़कर गायत्री वन्दना एवं यज्ञ महिमा का गान करें । परिक्रमा केवल मन्त्र से करें, कोई एक स्तुति करें या दोनों करें, इसका निर्धारण समय की मर्यादा को ध्यान में रखकर कर लेना चाहिए ।

ॐ यानि कानि च पापानि, ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति, प्रदक्षिण- पदे-पदे ॥

* * *

॥ गायत्री-स्तुति ॥

जयति जय गायत्री माता, जयति जय गायत्री माता।
आदि शक्ति तुम अलख-निरंजन जग पालन कर्त्री।
दुःख-शोक-भय-क्लेश-कलह-दारिद्र्य-दैन्यहर्त्री ॥ जयति० ॥
ब्रह्मरूपिणी प्रणत पालिनी, जगत् धातृ अम्बे।
भवभयहारी जन-हितकारी, सुखदा जगदम्बे ॥ जयति० ॥
भय-हारिणि भव-तारिणि अनघे, अज आनन्द राशी।
अविकारी अघहरी अविचलित अमले अविनाशी ॥ जयति० ॥
कामधेनु सत-चित आनन्दा, जय गङ्गा-गीता।
सविता की शाश्वती शक्ति तुम सावित्री-सीता ॥ जयति० ॥
ऋग्, यजु, साम, अथर्व प्रणयिनी, प्रणव महामहिमे।
कुण्डलिनी सहस्त्रार सुषुम्ना, शोभा गुण-गरिमे ॥ जयति० ॥
स्वाहा स्वधा शची ब्रह्माणी, राधा रुद्राणी।
जय सतरूपा वाणी, विद्या, कमला, कल्याणी ॥ जयति० ॥
जननी हम हैं दीन-हीन, दुःख दारिद के घेरे।
यदपि कुटिल कपटी कपूत, तऊ बालक हैं तेरे ॥ जयति० ॥
स्नेह-सनी करुणामयि माता! चरण शरण दीजै।
बिलख रहे हम शिशु सुत तेरे, दया दृष्टि कीजै ॥ जयति० ॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-दम्भ-दुर्भाव-द्वेष हरिये।
शुद्ध बुद्धि निष्पाप हृदय, मन को पवित्र करिये ॥ जयति० ॥
तुम समर्थ सब भाँति तारिणी, तुष्टि-पुष्टि त्राता।
सत मारग पर हमें चलाओ जो है सुख दाता ॥
जयति जय गायत्री माता। जयति जय गायत्री माता ॥

॥ यज्ञ महिमा ॥

यज्ञ रूप प्रभो हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए॥
वेद की बोलें ऋचाएँ, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर से तरें॥
अश्वमेधादिक रचाएँ यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें॥
कामना मिट जाए मन से, पाप अत्याचार की।
भावनाएँ शुद्ध होवें, यज्ञ से नर-नारि की॥
लाभकारी हो हवन, हर जीवधारी के लिए।
वायु-जल सर्वत्र हों, शुभ गन्ध को धारण किए॥
स्वार्थ भाव मिटे हमारा, प्रेम-पथ विस्तार हो।
'इदं न मम' का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो॥
हाथ जोड़ झुकाये मस्तक, वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणारूप करुणा, आपकी सब पर रहे॥
यज्ञ रूप प्रभो हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल कपट को, मानसिक बल दीजिए॥

* * *

॥ गुरुवन्दना ॥

एक तुम्हीं आधार सद्गुरु, एक तुम्हीं आधार।
जब तक मिलो न तुम जीवन में।
शान्ति कहाँ मिल सकती मन में॥
खोज फिरा संसार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥
कैसा भी हो तैरन हारा।
मिले न जब तक शरण सहारा॥
हो न सका उस पार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥
हे प्रभु! तुम्हीं विविध रूपों में।
हमें बचाते भव कूपों से॥
ऐसे परम उदार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥
हम आये हैं द्वार तुम्हारे।
अब उद्धार करो दुःखहारे॥
सुन लो दास पुकार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥
छा जाता जग में अँधियारा।
तब पाने प्रकाश की धारा।
आते तेरे द्वार सद्गुरु॥ एक तुम्हीं ०॥

हमारा युग-निर्माण सत्संकल्प

* हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।

* शरीर को भगवान् का मंदिर समझकर आत्म-संयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।

* मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाये रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।

* इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।

* अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।

* मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।

* समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।

* चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।

* अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।

* मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।

* दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसन्द नहीं।

* हम नर-नारी के प्रति पवित्र दृष्टि रखेंगे।

* संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।

* परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।

* सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।

* राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान् रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।

* मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनायेंगे, तो युग अवश्य बदलेगा।

* "हम बदलेंगे-युग बदलेगा" "हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा" इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

*

॥ विसर्जनम् ॥

आवाहन किये गये यज्ञ पुरुष, गायत्री माता, देव परिवार सबको भावभरी विदाई देते हुए पूजा वेदी पर पुष्प वर्षा की जाती है। पुष्पों के अभाव में पीले अक्षत बरसाये जाते हैं। विसर्जन के साथ यह प्रार्थना भी है कि ऐसा ही देव अनुग्रह बार-बार मिलता रहे।

ॐ गच्छ त्वं भगवन्नग्ने, स्वस्थाने कुण्डमध्यतः।
हुतमादाय देवेभ्यः, शीघ्रं देहि प्रसीद मे॥
गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ, स्वस्थाने परमेश्वर!॥
यत्र ब्रह्मादयो देवाः, तत्र गच्छ हुताशन!॥
यान्तु देवगणाः सर्वे, पूजामादाय मामकीम्।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं, पुनरागमनाय च॥

इसके पश्चात् जयघोष, अन्त में प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम समाप्त किया जाए।

॥ जयघोष ॥

१. गायत्री माता की- जय।
२. यज्ञ भगवान् की- जय।
३. वेद भगवान् की- जय।
४. भारतीय संस्कृति की- जय।
५. भारत माता की- जय।
६. एक बनेंगे- नेक बनेंगे।
७. हम सुधरेंगे- युग सुधरेगा।
८. हम बदलेंगे- युग बदलेगा।
९. विचार क्रान्ति अभियान- सफल हो, सफल हो, सफल हो।
१०. ज्ञान यज्ञ की लाल मशाल-सदा जलेगी- सदा जलेगी।
११. ज्ञान यज्ञ की ज्योति जलाने- हम घर-घर में जायेंगे।
१२.नया सवेरा नया उजाला- इस धरती पर लायेंगे।
१३. नया समाज बनायेंगे- नया जमाना लायेंगे।
१४. जन्म जहाँ पर- हमने पाया।
१५. अन्न जहाँ का- हमने खाया।
१६. वस्त्र जहाँ के- हमने पहने।

१७. ज्ञान जहाँ से- हमने पाया।
१८. वह है प्यारा- देश हमारा।
१९. देश की रक्षा कौन करेगा- हम करेंगे, हम करेंगे।
२०. युग निर्माण कैसे होगा- व्यक्ति के निर्माण से।
२१. माँ का मस्तक ऊँचा होगा- त्याग और बलिदान से।
२२. नित्य सूर्य का ध्यान करेंगे- अपनी प्रतिभा प्रखर करेंगे।
२३. मानव मात्र- एक समान।
२४. जाति वंश सब- एक समान।
२५. नर और नारी- एक समान।
२६. नारी का सम्मान जहाँ है, संस्कृति का उत्थान वहाँ है।
२७. जागेगी भाई जागेगी, नारी शक्ति जागेगी।
२८. हमारी युग निर्माण योजना- सफल हो, सफल हो, सफल हो।
२९. हमारा युग निर्माण सत्संकल्प-पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।
३०. इक्कीसवीं सदी- उज्ज्वल भविष्य।
३१. वन्दे-वेद मातरम्॥

॥ देव-दक्षिणा-श्रद्धाञ्जलिः ॥

यज्ञ आयोजन में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को यज्ञ भगवान् के-देवताओं के प्रति श्रद्धा-दक्षिणा के रूप में अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों में से कोई एक छोड़ने का अनुरोध करना चाहिए-कहना चाहिए देवता किसी की श्रद्धा-भक्ति इसी आधार पर परखते हैं कि उनने कुमार्ग छोड़ने और सन्मार्ग अपनाने के लिए कितना साहस दिखाया। यह साहस ही वह धन है, जिसके आधार पर देव शक्तियों की प्रसन्नता एवं अनुकम्पा प्राप्त की जा सकती है। इस अवसर पर जबकि सभी देवता उपस्थित हुए हैं, सभी उपस्थित सज्जनों को उन्हें कुछ भेंट प्रदान करनी चाहिए। खाली हाथ स्वागत और विदाई नहीं करनी चाहिए।त्याज्य दुष्प्रवृत्तियों में कुछ का उल्लेख यहाँ है।

त्यागने योग्य दुष्प्रवृत्तियाँ

१- चोरी, बेईमानी, छल, मुनाफाखोरी, हराम की कमाई, मुफ्तखोरी आदि । अनीति से दूर रहना, अनीति से उपार्जित धन का उपयोग न करना ।

२- मांसाहार तथा मारे हुए पशुओं के चमड़े का प्रयोग बन्द करना ।

३- पशुबलि अथवा दूसरों को कष्ट पहुँचाकर अपना भला करने की प्रवृत्ति छोड़ना ।

४- विवाहों में वर पक्ष द्वारा दहेज लेने तथा कन्या पक्ष द्वारा जेवर चढ़ाने का आग्रह न करना ।

५- विवाहों की धूम-धाम में धन की और समय की बर्बादी न करना ।

६- नशे (तम्बाकू, शराब, भाँग, गाँजा, अफीम आदि) का त्याग ।

७- गाली-गलौज एवं कटु भाषण का त्याग ।

८- जेवर और फैशनपरस्ती का त्याग ।

९- अन्न की बर्बादी और जूठन छोड़ने की आदत का त्याग ।

१०- जाति-पाँति के आधार पर ऊँच-नीच, छूत-छात न मानना ।

११- पर्दाप्रथा का त्याग- किसी को पर्दा करने के लिए बाध्य न करना ।स्वयं पर्दा न करना ।

१२- महिलाओं एवं लड़कियों के साथ पुरुषों और लड़कों की तुलना में भेद-भाव या पक्षपात न करना ।

अपनाने योग्य सत्प्रवृत्तियाँ

१- कम से कम दस मिनट नित्य नियमित गायत्री उपासना ।

२- घर में अपने से बड़ों का नियमित अभिवादन करना ।

३- छोटों के सम्मान का ध्यान रखना, उनसे तू करके न बोलना ।

४- अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहना तथा उनका पालन करना ।

५- परिश्रम का अभ्यास बनाये रहना, किसी काम को छोटा न समझना ।

६- नियमित स्वाध्याय-जीवन को सही दिशा देने वाला सत्साहित्य कम से कम आधा घण्टे नित्य स्वयं पढ़ना या सुनना ।

७- भारतीय संस्कृति की प्रतीक शिखा एवं यज्ञोपवीत का महत्त्व समझना, उन्हें निष्ठापूर्वक धारण करना-दूसरों को प्रेरणा देना ।

८- सादगी का जीवन जीना, औसत भारतीय स्तर के रहन-सहन के अनुरूप विचार एवं अभ्यास बनाना । उसमें गौरव अनुभव करना ।

९- ज्ञान-यज्ञ-सद्विचार के प्रसार के लिए कम से कम दस पैसा धन और एक घण्टा समय प्रतिदिन बचाकर सही ढंग से खर्च करना ।

१०- परिवार में सामूहिक उपासना, आरती आदि का क्रम चलाना ।

११- प्रतिवर्ष अपना जन्मदिन सामूहिकरूप से यज्ञीय वातावरण में मनाना तथा जीवन की सार्थकता के लिए व्रतशील जीवन क्रम बनाना ।

१२- समाज के प्रति, अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूकता, समाज में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए किये जाने वाले सामूहिक प्रयासों में उत्साह भरा योगदान देना ।

इस श्रद्धांजलि के लिए छपे हुए प्रतिज्ञा पत्र, जो भी अर्पण करना चाहें, उन्हें दे देने चाहिए और उन्हें भरने का अनुरोध कर देना चाहिए ।जो दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ी हों, उनके आगे निशान लगाते हुए अर्पणकर्त्ता को अपना पूरा नाम व पता उसी फार्म पर लिख कर देना चाहिए । दुष्प्रवृत्ति वही छोड़ी जाए, जो इस समय अपने में हो । जो नहीं है, उन्हें छोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं । प्रतिज्ञा को दृढ़तापूर्वक निभाया जाना चाहिए ।

श्रद्धांजलि अर्पणकर्त्ताओं को पुरोहित मंगल आशीर्वाद, तिलक समेत एक मंगल पुष्पोपहार देते जाएँ ।प्रतिज्ञापत्र अक्षत, पुष्प दाहिने हाथ में लेकर बायाँ हाथ नीचे लगा लें, संकल्प पढ़ें और यह तीनों वस्तुएँ वेदी के समीप रखे थाल में पंक्तिबद्ध जाकर रख दें ।

* * *

॥ विशिष्ट प्रकरण ॥

॥ शक्तिपीठों की दैनिक पूजा ॥

गायत्री शक्तिपीठों में मातृशक्ति की प्रतिमाएँ स्थापित हैं । अस्तु, उनकी नियमित पूजा-अर्चा का क्रम चलता है । इसके लिए यह पद्धति दी जा रही है । युग निर्माण अभियान के अन्तर्गत अपनाये गए हर कर्मकाण्ड के प्रति यह दृष्टि बराबर बनाकर रखी गई है कि उसका कलेवर छोटा होते हुए भी उसका प्रभाव अद्भुत ही रहा है ।

दैनिक पूजा अर्चा में भी यही दृष्टि जीवन्त रखी जानी है । प्रतीक पूजा मनोविज्ञान सम्मत ही नहीं, उसका एक अपना विधान भी है । प्रतीक से भावना में उभार आता है और प्रखर भावना के संघात से, प्रतीक से सम्बद्ध दिव्य सत्ता प्रस्फुटित-प्रकट हुए बिना रह नहीं पाती । जहाँ पूजा आराधना करने वाले भावनाशील होते हैं, वहाँ मूर्ति में दिव्यता उभर आती है । मीराबाई, और श्रीरामकृष्ण परमहंस के उदाहरण सर्वविदित हैं। इसीलिए भारतीय-संस्कृति में प्रतीक-पूजा के साथ भाव भरे पूजन-आराधन को अनिवार्य रूप से जोड़कर रखा गया है । शक्तिपीठों में पूजा-उपचार थोड़े ही हों, पर नियमित और भावपूर्ण हों, तो उसका प्रभाव प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है । उस स्थिति में पूजा उपचार मात्र औपचारिकता या शिष्टाचार तक ही सीमित नहीं रहते वह एक प्रभावशाली साधना प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त और फलित होते हैं । शक्तिपीठों में इस साधना क्रम को भी समुचित महत्त्व दिया जाना आवश्यक है ।देवालयों में पूजन के संक्षिप्त एवं विस्तृत अनेक क्रम चलते हैं । गायत्री शक्तिपीठों के सामान्य कर्मकाण्ड का भावभरा पूजन क्रम नीचे दिया जा रहा है-

१. जागरण-प्रातः मन्दिर के पट खोलकर रात्रि में डाला गया प्रतिमा आवरण हटाने के पूर्व उन्हें जगाने का विधान है । यह ठीक है कि वह परम चेतना कभी सोती नहीं; किन्तु यह भी सत्य है कि उन घट-घटवासी को जब तक अपने अन्दर जाग्रत् न किया जाए, तब तक उसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई नहीं देगा । मन मन्दिर हो या देव मन्दिर-महाशक्ति का

विशिष्ट अनुग्रह पाने की आकांक्षा रखने वाले को उसे जाग्रत् करने की प्रक्रिया भी निभानी पड़ती है।

जागरण क्रम में पुजारी पहले पवित्रीकरण आदि षट्कर्म करें। उसके बाद ताली या छोटी घण्टी बजाते हुए नीचे दिया हुआ मन्त्र बोलते हुए आवरण आदि हटाएँ।

ॐ उत्तिष्ठ त्वं महादेवि, उत्तिष्ठ जगदीश्वरि।
उत्तिष्ठ वेदमातस्त्वं, त्रैलोक्यमङ्गलं कुरु॥

जागरण कराने के बाद नीचे लिखे मंत्र बोलते हुए माँ को प्रणाम करें।

ॐ देवि! प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि! चराचरस्य॥
विद्याः समस्तास्तव देविभेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्, का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः॥
विश्वेश्वरि! त्वं परिपासि विश्वं, विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति, विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥

- मा० पु० ८८.२,५,३३

(२) **शुद्धिकरण-** परमात्मा को पवित्रता प्रिय है, उस महाशक्ति का प्रवाह सदा निर्मल पवित्र माध्यमों से ही होता है, इसलिए उससे सम्बद्ध स्थल, मन्दिर, प्रतीक मूर्ति एवं साधन, व्यक्तित्व सभी को निर्मल रखने की परम्परा है। इस उत्तरदायित्व को स्मरण रखते हुए मूर्तिकक्ष एवं मूर्ति की स्वच्छता भावनापूर्वक की जानी चाहिए। निम्न मंत्र का उच्चारण करते रहें।

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः, ता नऽऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्माऽअरंगमामवो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जन यथा च नः। - ११.५०-५२

मन्त्र पूरा होने पर भी कृत्य पूरा न हो-तो गायत्री मन्त्र दुहराते रहें।

नोट- मूर्ति की स्वच्छता के क्रम में सामान्य रूप में गीले वस्त्र से क्रमशः मातेश्वरी के मुख, हाथ और चरण पोंछ दिये जाते हैं। आवश्यकता और

भावना के अनुसार सारा शृंगार उतारकर पूरी मूर्ति की स्वच्छता का क्रम अपनाया जाता है। इसके लिए प्रात:काल के अतिरिक्त भी कोई समय चुना जा सकता है; क्योंकि शृंगार उतारने, स्वच्छता करने एवं नया शृंगार बनाने में काफी समय लग जाता है। ऐसे अवसरों पर सेवा-सज्जा करने वाले स्पष्ट रूप से सस्वर **स्तुतामया वरदा०, गायत्री चालीसा, यन्मण्डलम्०, गायत्री मंत्र** आदि का पाठ करते रहें।

पूजा उपचार- शुद्धिकरण के उपरान्त प्रात: आरती की व्यवस्था की जानी चाहिए। आरती के निर्धारित समय पर सभी श्रद्धालुओं को एकत्रित करने के लिए घण्टी का कोई निर्धारित संकेत किया जाना उपयुक्त रहता है। उस समय प्रतिमा के सामने का पर्दा डालकर रखा जाए। सस्वर मंत्र बोलते हुए पुजारी अन्दर माँ का षोडशोपचार पूजन करे।सभी उपस्थित जन भक्ति-भावनापूर्वक संगति करें।पूजन का क्रम संक्षिप्त उक्तियों सहित यहाँ दिया जा रहा है। इसके लिए पुरुषसूक्त के १६ मंत्रों का उपयोग भी श्रद्धानुसार नित्य भी किया जा सकता है। पर्वों एवं विशेष प्रसंगों पर तो पुरुषसूक्त से पूजन किया ही जाना चाहिए।

पूजन भावनापूर्वक किया जाना चाहिए। देवशक्तियों को यों न तो किसी पदार्थ की आवश्यकता होती है और न किसी सम्मान की अपेक्षा; किन्तु साधक की भक्ति भावना से उनकी तुष्टि अवश्य होती है। घर में कोई सम्माननीय अतिथि आते हैं। प्रेमी परिजन उन्हें बुलाते हैं। उन अतिथि को किसी वस्तु का अभाव नहीं होता, फिर भी प्रेमी परिजन प्रेमवश श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति अपने साधनों द्वारा उनका सम्मान करते हैं। इससे दोनों ही पक्षों को सन्तोष होता है। पूजा-उपचार के समय भी ऐसा ही भाव उभरना चाहिए। उपचार की वस्तुएँ चढ़ाते समय अपने सर्वोत्तम साधनों-विभूतियों को प्रभु चरणों में अर्पित करने का उत्साह-उल्लास तरंगित होता रहे, तो पूजन सार्थक और सशक्त होता है।

॥ षोडशोपचारपूजन ॥

ॐ श्री गायत्रीदेव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि ॥१ ॥आसनं समर्पयामि ॥२ ॥ पाद्यं समर्पयामि ॥३ ॥अर्घ्यं समर्पयामि ॥४ ॥

आचमनम् समर्पयामि ॥५ ॥ स्नानम् समर्पयामि ॥६ ॥ वस्त्रम् समर्पयामि ॥७ ॥यज्ञोपवीतम् समर्पयामि ॥८ ॥ गन्धम् विलेपयामि ॥९ ॥ अक्षतान् समर्पयामि ॥१० ॥ पुष्पाणि समर्पयामि ॥११ ॥ धूपम् आघ्रापयामि ॥१२ ॥ दीपम् दर्शयामि ॥१३ ॥ नैवेद्यं निवेदयामि ॥१४ ॥ ताम्बूलपूगीफलानि समर्पयामि ॥१५ ॥ दक्षिणां समर्पयामि ॥१६ ॥ सर्वाभावे अक्षतान् समर्पयामि ॥ ॥ ततो नमस्कारं करोमि-

ॐ स्तुता मया वरदा.......... ।

आरती - आरती के समय उपस्थित व्यक्ति पंक्तिबद्ध व्यवस्थित क्रम से खड़े हों। घड़ियाल, शंख आदि सधे हुए क्रम से तालबद्ध बजाए जाएँ। वातावरण में दिव्यता लाने के लिए यह आवश्यक है, अस्त-व्यस्त क्रम से यह सम्भव नहीं।

आरती की ज्योति जलाकर पर्दा खोला जाए। पुजारी, आरती के लिए इस प्रकार खड़े हों कि प्रतिमा के दर्शन में उपस्थित परिजनों को बाधा न पड़े। आरती में पहले दीपक घुमाया जाता है। दीपक रखकर छोटे शंख में जल भरकर उसे ५-७ बार घुमाना चाहिए।

जल के बाद वस्त्र व चँवर घुमाया जाता है, अन्त में एक-दो बार जल घुमाकर वही जल उपस्थित समुदाय पर छिड़क दिया जाता है। यह सारे कृत्य निर्धारित समय में किए जाने चाहिए। इसके बाद दैनिक आरती के निर्धारित क्रम के अनुसार प्रक्रिया पूरी की जानी चाहिए, प्रातः सायं दोनों समय आरती का यही क्रम रहेगा।

भोजन नैवेद्य — भारतीय संस्कृति में भोजन को प्रसाद रूप- औषधि रूप में लेने का नियम है। प्रभु समर्पित पदार्थों में दिव्य संस्कारों का उदय हो जाता है। भोजन के प्रति राग-मोह की वृत्ति क्षीण होकर कर्त्तव्य बुद्धि जाग्रत् होती है।शक्तिपीठों में साधक जो भोजन अपने लिए तैयार करें, वह शुद्ध सात्विक हो। वही नैवेद्य माँ को अर्पित किया जाए। नैवेद्य का क्रम इस प्रकार है, श्रद्धापूर्वक मन्त्र बोलते हुए क्रमशः अर्घ्य, नैवेद्य एवं आचमन अर्पित किया जाए।

।। अर्घ्य ।।

ॐ तापत्रय-हरं दिव्यं , परमानन्दलक्षणम् ।
नमस्तुभ्यं जगद्धात्रि ! अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम् ।।

।। नैवेद्य ।।

ॐ सत्पात्रसिद्धं नैवेद्यं, विविधभोज्यसमन्वितम् ।
निवेदयामि देवेशि, सानुगायै गृहाण तत् ।।

।। आचमन ।।

ॐ वेदानामपि वेद्यायै, देवानां देवतात्मने ।
मया ह्याचमनं दत्तं, गृहाण जगदीश्वरि ।।

पुष्पांजलि - रात्रि में पट बन्द किए जाने के पूर्व पुष्पाञ्जलि की जाए । दिन भर माँ के अनुग्रह के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हुए पुष्पाञ्जलि की जाए । पुष्प की तरह माँ के चरणों में समर्पित होने का भाव किया जाए ।

दोनों हाथों में पुष्प लेकर मन्त्र बोलें तथा क्रमशः माँ के आगे चढ़ाएँ ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।
- ३१.१६

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो, विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैः, द्यावाभूमी जनयन् देवऽ एकः ।।
- १७.१९

शयन- रात्रि में देव प्रतिमाओं को शयन कराने की परम्परा है । तदनुसार पर्दा डालकर आवश्यक आच्छादन प्रतिमा पर चढ़ाकर नीचे लिखे मन्त्र से शयन की प्रार्थना की जाए-

ॐ इमां पूजां मया देवि ! यथाशक्त्युपपादिताम् ।
शयनार्थं महादेवि ! व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ।।

* * *

॥ कलशस्थापन ॥

सूत्र संकेत— कलश की स्थापना और पूजा लगभग प्रत्येक कर्मकाण्ड में की जाती है। सामान्य रूप से कलश पहले से तैयार रखा रहता है और पूजन क्रम में उसका पूजन करा दिया जाता है। यदि कहीं इस प्रकरण का विस्तार करना आवश्यक लगे, तो स्थापना के लिए नीचे दिये गये पाँच उपचार कराये जाते हैं। यह उपचार पूर्ण होने पर कलश प्रार्थना प्रयोग करके आगे बढ़ा जाता है। यह विस्तृत कलश स्थापन, प्राण प्रतिष्ठा, गृह प्रवेश, गृह शान्ति, नवरात्रि जैसे प्रकरणों में जोड़ा जा सकता है। बड़े यज्ञों में देव पूजन के पूर्व प्रधान कलश अथवा पंच वेदिकाओं के पाँचों कलशों पर एक साथ यह उपचार कराये जा सकते हैं।

स्थापना प्रसंग के लिए रँगा हुआ कलश, उसके नीचे रखने का घेरा (ईडली), अलग पात्र में शुद्ध जल, कलावा, मंगल द्रव्य, नारियल पहले से तैयार रखने चाहिए।

शिक्षण एवं प्रेरणा— कलश को सभी देव शक्तियों, तीर्थों आदि का संयुक्त प्रतीक मानकर, उसे स्थापित-पूजित किया जाता है। कलश को यह गौरव मिला है- उसकी धारण करने की क्षमता-पात्रता से। घट स्थापन के साथ स्मरण रखा जाना चाहिए कि हर व्यक्ति, हर क्षेत्र, हर स्थान में धारण करने की अपनी क्षमता होती है। उसे सजाया-सँवारा जाना चाहिए। उसके लिए उपयुक्त आधार दिया जाना चाहिए।

पात्र में पवित्र जल भरते हैं। श्रद्धा और पवित्रता से भरी- पूरी पात्रता ही धन्य होती है। उसमें मंगल द्रव्य डालते हैं। पात्रता को मंगलमय गुणों से विभूषित किया जाना चाहिए। कलावा बाँधने का अर्थ है- पात्रता को आदर्शवादिता से अनुबन्धित करना। नारियल-श्रीफल, सुख- सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है। उसकी स्थापना का तात्पर्य है कि ऐसी व्यवस्थित पात्रता पर ही सुख-सौभाग्य स्थिर रहते हैं।

क्रिया और भावना— पाँचों उपचार एक-एक करके मन्त्रों के साथ सम्पन्न करें, उनके अनुरूप भावना सभी बनाये रखें।

(१) घटस्थापन— मन्त्रोच्चार के साथ कलश को निर्धारित स्थान या

(२) गौरी (तपस्या) हरा

ॐ आयंगौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः॥ ॐ गौर्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -३.६

(३) ब्रह्मा (निर्माण) लाल

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽ आवः। स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्चवि वः॥ ॐ ब्रह्मणे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥

-१३.३

(४) विष्णु (ऐश्वर्य) सफेद

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥ ॐ विष्णवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -५.१५

(५) रुद्र (दमन) लाल

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ उतो तऽ इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः॥ ॐ रुद्राय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -१६.१

(६) गायत्री (ऋतम्भरा प्रज्ञा) पीला

ॐ गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पंक्त्या सह। बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥ ॐ गायत्र्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - २३.३३

(७) सरस्वती बुद्धि (शिक्षा) लाल

ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः। ॐ सरस्वत्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - २०.८४

(८) लक्ष्मी (समृद्धि) सफेद

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकं मऽ इषाण। ॐ लक्ष्म्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -३१.२२

(९) दुर्गा शक्ति (संगठन) लाल

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥ ॐ दुर्गायै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥

—ऋ० १.९९.१

(१०) पृथ्वी (क्षमा) सफेद

ॐ मही द्यौः पृथिवी च नऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि॥ -८.३२

(११) अग्नि (तेजस्विता) पीला

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा ꣳसि प्र मुमुग्ध्यस्मत्। ॐ अग्नये नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - २१.३

(१२) वायु (गतिशीलता) सफेद

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वर ꣳसहस्त्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ॐ वायवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -२७.२८

(१३) इन्द्र (व्यवस्था) लाल

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र ꣳ हवेहवे सुहव ꣳ शूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्र ꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः। ॐ इन्द्राय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।। -२०.५०

(१४) यम (न्याय) सफेद

ॐ सुगन्नुपंथां प्रतिशन्नऽएहि ज्योतिष्मध्येह्यजरन्नऽआयुः । अपैतु मृत्युममृतं म ऽआगाद्वैवस्वतोनो ऽ अभयं कृणोतु। ॐ यमाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।।

(१५) कुबेर (मितव्यायिता) काला

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः। ॐ कुबेराय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।। -तै० आ० १.३१

(१६) अश्विनीकुमार (आरोग्य) पीला

ॐ अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्।। ॐ अश्विनीकुमाराभ्यां नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि ।।

-२०.८०

(१७) सूर्य (प्रेरणा) काला

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।। ॐ सूर्याय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।। -३३.४३; ३४.३१

(१८) चन्द्रमा (शान्ति) लाल

ॐ इमं देवाऽ असपत्नᳬसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽ एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाᳬराजा। ॐ चन्द्रमसे नमः। आवा०, स्था०, , ध्यायामि॥ -९.४०

(१९) मङ्गल (कल्याण) सफेद

ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाᳬरेताᳬसि जिन्वति॥ ॐ भौमाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -३.१२

(२०) बुध (सन्तुलन) हरा

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ᳬ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥ ॐ बुधाय नमः॥ आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -१५.५४

(२१) बृहस्पति (अनुशासन) पीला

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवसऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा। ॐ बृहस्पतये नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -ऋ० २.२३.१५; २६.३

(२२) शुक्र (संयम) हरा

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ᳬ शुक्रमन्धस-ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥ ॐ शुक्राय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -१९.७५

(२३) शनिश्चर (तितिक्षा) लाल

ॐ शन्नो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः। ॐ शनिश्चराय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -३६.१२

(२४) राहु (संघर्ष) पीला

ॐ कया नश्चित्रऽआ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता। ॐ राहवे नमः। आवा०, स्था०, ध्यायामि ॥-२७.३९

(२५) केतु (साहस) लाल

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥ ॐ केतवे नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि ॥ २९.३७

(२६) गङ्गा (पवित्रता) सफेद

ॐ पंच नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः। सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित्॥ ॐ गङ्गायै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -३४.११

(२७) पितृ (दान) पीला

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्॥ ॐ पितृभ्यो नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि ॥ -१९.३६

(२८) इन्द्राणी (श्रमशीलता) सफेद

ॐ अदित्यै रास्नाऽसीन्द्राण्या उष्णीषः। पूषासि घर्माय दीष्व॥ ॐ इन्द्राण्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ -३८.३

(२९) रुद्राणी (वीरता) काला

ॐ या ते रुद्र शिवातनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥ ॐ रुद्राण्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -१६.२

(३०) ब्रह्माणी (नियमितता) पीला

ॐ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः। ॐ ब्रह्माण्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -२०.८८

(३१) सर्प (धैर्य) काला

ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः। ॐ सर्पेभ्यो नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - १३.६

(३२) वास्तु (कला) हरा

ॐ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ ॐ वास्तुपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि॥ —ऋ० ७.५४.१

(३३) आकाश (विशालता) नीला

ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा।ॐ आकाशाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -७.११

* * *

॥ पुरुष सूक्त ॥

सूत्र संकेत— पुरुष सूक्त का प्रयोग विशेष पूजन के क्रम में किया जाता है। षोडशोपचार पूजन के एक-एक उपचार के साथ क्रमशः एक-एक मन्त्र बोला जाता है। जहाँ कहीं भी किसी देवशक्ति का पूजन विस्तार से करना हो, तो पुरुष सूक्त के मन्त्रों के साथ षोडशोपचार पूजन करा दिया जाता है। पंचोपचार पूजन में भी इस सूक्त से सम्बन्धित मन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है। यज्ञादि के विस्तृत देवपूजन में, पर्वों पर, पर्व से सम्बन्धित देव शक्ति के पूजन में बहुधा इसका प्रयोग किया जाता है। वातावरण में पवित्रता और श्रद्धा के संचार के लिए भी पुरुष सूक्त का पाठ सधे हुए कण्ठ वाले व्यक्ति सामूहिक रूप से करते हैं।

शिक्षण एवं प्रेरणा— पुरुष सूक्त में परमात्मा की विराट् सत्ता का वर्णन किया गया है। उस महत् चेतना के विस्तार के संकल्प से ही इस जड़- चेतन की सृष्टि हुई है। किसी भी प्रतीक देव विग्रह का पूजन करते हुए यही चिन्तन उभरता रहता है कि हम उसी एक विराट्, सनातन, अविनाशी का पूजन कर रहे हैं।

क्रिया और भावना— पुरुष सूक्त से पूजन प्रारम्भ कराने के पूर्व उपस्थित श्रद्धालुओं को उक्त सिद्धान्त बतलाया जाना चाहिए, ताकि पूजन में उनका भी भाव-संयोग हो सके। यदि सम्भव हो, तो सभी के हाथ में अथवा पूजन वेदी के निकटवर्ती प्रतिनिधियों के हाथ में अक्षत- पुष्प दे देने चाहिए। उसे पूरे पूजन के साथ हाथ में रखें, भाव पूजन में सम्मिलित रहें और वे पुष्पांजलि के साथ उन्हें अर्पित करें। भावना करें कि हमारे पास जो कुछ भी है, उसी का दिया हुआ है। उसके विराट् स्वरूप एवं उद्देश्यों को हम पहचानें और उनके निमित्त अपने साधनों को- क्षमताओं को अर्पित करते हुए उन्हें सार्थक करें, धन्य बनाएँ। उस सर्वव्यापी को, उसके आदर्शों को हर कदम पर, हर स्तर पर, हर प्रसंग में प्रत्यक्ष की तरह देखते हुए श्रद्धासिक्त होकर पूजन भाव से सक्रिय रहें। उसके दिये साधनों को उसके उद्देश्यों में लगाने में कृपणता न बरतें, उदार भक्ति-भावना का परिचय-प्रमाण दें।

सम्बन्धित सामग्री हाथ में लेकर मन्त्र बोला जाए। मन्त्र पूरा होने पर

जिस देव शक्ति का पूजन है, उसका नाम लेते हुए षोडशोपचार के आधार पर **स्थापयामि, समर्पयामि** आदि कहते हुए उसे चढ़ाते चलें ।

१- आवाहनम्

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः, सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि ꣳ सर्वतस्पृत्वा, अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

२- आसनम्

ॐ पुरुषऽएवेद ꣳ सर्वं, यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो, यदन्नेनातिरोहति ॥

३- पाद्यम्

ॐ एतावानस्य महिमातो, ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

४- अर्घ्यम्

ॐ त्रिपादूर्ध्व ऽ उदैत्पुरुषः, पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्, साशनानशने अभि ॥

५- आचमनम्

ॐ ततो विराडजायत, विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत, पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥

६- स्नानम्

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः, सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यान्, आरण्या ग्राम्याश्च ये ॥

७- वस्त्रम्

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽ, ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दा ꣳ सि जज्ञिरे तस्माद्, यजुस्तस्मादजायत ॥

८-यज्ञोपवीतम्

ॐ तस्मादश्वा ऽ अजायन्त, ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्, तस्माज्जाता ऽ अजावयः ॥

९- गन्धम्

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्, पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवाऽअयजन्त, साध्या ऽ ऋषयश्च ये॥

१०- पुष्पाणि

ॐ यत् पुरुषं व्यदधुः, कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू, किमूरू पादा उच्येते॥

११- धूपम्

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्, बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः, पद्भ्या ँ शूद्रो अजायत॥

१२- दीपम्

ॐ चन्द्रमा मनसो जातः, चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च, मुखादग्निरजायत॥

१३- नैवेद्यम्

ॐ नाभ्याऽ आसीदन्तरिक्ष ँ, शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्, तथा लोकाँ२ अकल्पयन्॥

१४- ताम्बूलपूगीफलानि

ॐ यत्पुरुषेण हविषा, देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं, ग्रीष्म ऽ इध्मःशरद्धविः॥

१५- दक्षिणा

ॐ सप्तास्यासन्परिधयः, त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽ, अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥

१६- मंत्र पुष्पांजलिः

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

- ३१.१-१६

* * *

॥ त्रिदेव पूजन ॥

सूत्र संकेत- युग निर्माण अभियान के अन्तर्गत, जो बड़े आयोजन होते हैं, उनमें त्रिदेव पूजन की परिपाटी है। इसमें आद्यशक्ति वेदमाता गायत्री, भारतीय धर्म के जनक यज्ञदेव और युगावतार के प्रतीक ज्योति पुरुष, जन-समूह युक्त लाल मशाल का पूजन किया जाता है।

तीन मन्त्रों की सशक्त व्याख्या के साथ किया जाने वाला यह संक्षिप्त पूजन अनेक दृष्टियों से उपयोगी है। इससे युग परिवर्तन की आधार रूप तीन शक्तियों का महत्त्व जन-जन के मानस में जमता है। इससे उनमें अपने दृष्टिकोण, आचरण एवं व्यवहार बदलने-सँभालने की प्रेरणा मिलती है। थोड़ी सी ही प्रखर- चिन्तन- युक्त व्याख्या से भाव-भरी श्रद्धा का वातावरण बन जाता है। लम्बे पूजन क्रम में तो थोड़े से विशिष्ट श्रद्धालुजन ही बैठते हैं। उसके साथ जो प्रेरणा का संचार किया जाता है, थोड़े समय के लिए आने वाले व्यक्ति उससे वंचित रह जाते हैं। यह पूजन उस समय भी कराया जा सकता है, जब मुख्य कार्य प्रारम्भ होने को हो और अधिकांश व्यक्ति उपस्थित हो गये हों। जैसे पर्व प्रकरण में मुख्य सन्देश देने के ठीक पहले, बड़े यज्ञों में सामान्य देवपूजन पूरा हो जाने पर, विशिष्ट गोष्ठियों आदि के समय श्रद्धा भरा वातावरण बनाने के लिए भी यह पूजन किया जा सकता है।

शिक्षण एवं प्रेरणा- यह सृष्टि त्रिआयामी कही गयी है। तीन लोक, तीन देव, तीन शरीर, तीन गुणों आदि से सभी परिचित हैं। इसी प्रकार की स्थापना के भी तीन आधार तीन देव शक्तियों के रूप में हैं। इनके सान्निध्य, संसर्ग और संयोग से ही अवांछनीयता का निवारण होकर वांछित सुयोग बन सकेंगे।

(१) आद्यशक्ति गायत्री - भारतीय संस्कृति- देव संस्कृति की जननी गायत्री, जिन्हें वेदमाता, देवमाता एवं विश्वमाता के नाम से भी जानते हैं, सद्भाव एवं सद्विचारों का उभार-उन्नयन इन्हीं की कृपा से, इनसे सम्बन्धित गुह्य सूत्रों को धारण करने से सम्भव होता है। अनास्था असुर के सर्वव्यापी अस्तित्व को यही असुर निकन्दिनी, महाप्रज्ञा के रूप में समाप्त करेगी।

(२) यज्ञ भगवान्-यह सृष्टि यज्ञमय है। ईश्वरीय अनुशासन से

चलने वाले आदान-प्रदान के क्रम को यज्ञ कहा जाता है, इसीलिए इसे देव धर्म का जनक कहा जाता है । यज्ञीय भाव की स्थापना से ही कर्म और व्यवहार में से अधोगामी प्रवृत्ति समाप्त होकर श्रेष्ठता की ऊर्ध्वगामी प्रवृत्तियों का विकास होगा । इसी आधार पर नवयुग की स्थापना सम्भव होगी ।

(३) ज्योतिपुरुष- युगशक्ति निष्कलंक अवतार के लीला संदोह का प्रतीक जनशक्ति युक्त मशाल का चिह्न है । दिव्य संरक्षण और अनुशासन में जन समर्थित प्रचंड शक्ति प्रवाह का उदय होता है । अवांछनीयता के निवारण और वांछनीयता की स्थापना में असम्भव को सम्भव यही बनाएगी । ध्वंस और सृजन की, गलाई और ढलाई की संयुक्त प्रक्रिया इसी के द्वारा संचालित होगी ।

क्रिया और भावना- हाथ में जल, पुष्प, अक्षत लेकर भावनापूर्वक मन्त्रोच्चार के साथ पूजन वेदी पर क्रमशः अर्पित करें ।

(१) आद्यशक्ति गायत्री - भावना करें कि आद्यशक्ति करुणामयी विश्वमाता की शरण में जाकर हम सब उनकी करुणा, संवेदना, मंगल भावना से सुसंस्कारित हो रहे हैं ।

ॐ गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पंक्त्या सह । बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ॐ गायत्र्यै नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ - २३.३३

(२) यज्ञ भगवान् - भावना करें कि दिव्य अनुशासन से जुड़कर हम सबकी चेतना क्रियाशीलता को, पराक्रम पुरुषार्थ को यज्ञ जैसी प्रखरता-पवित्रता प्राप्त हो रही है ।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त, यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
ॐ यज्ञपुरुषाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि,
ध्यायामि । - ३१.१६

(३) ज्योति पुरुष - भावना करें कि युग शक्ति एक प्रचण्ड प्रवाह के रूप में उभर रही है, उसकी एक किरण हम भी हैं । उस विशाल तन्त्र के एक घटक के नाते, हम उस विराट् की वन्दना- अभ्यर्थना कर रहे हैं ।

ॐ अग्ने नय सुपथा राये, अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो, भूयिष्ठां ते नमऽ उक्तिं विधेम ॥ॐ ज्योतिपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। -५.३६, ७.४३

* * *

॥ पंचवेदी पूजन ॥

सूत्र संकेत- हमारा शरीर अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनन्दमय कोश के द्वारा विनिर्मित है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज चार प्रकार के प्राणी और पाँचवें जड़ पदार्थ, यह पंचधा प्रकृति भी इन्हीं पाँच देवताओं की प्रतिक्रिया है। जड़- चेतन इस जगत् के पंचधा विश्लेषण को पंचदेवों के रूप में माना गया है। पंचतत्त्वों को भी उसी श्रेणी में गिना जाता है। इन्हीं से यह जगत् बना है। शरीर से लेकर समस्त दृश्य जड़ जगत् केवल परमाणुओं का बना पदार्थ ही नहीं है; वरन् उसके अन्तराल में दैवी चेतना काम करती है। जड़ में चेतन की भावना-यही अध्यात्मवाद है। चेतन को जड़ मानना-यही भौतिकवाद है। सृष्टि के आधारभूत पंचतत्त्वों को अध्यात्म ने चेतन-देवसत्ता से ओत-प्रोत माना है, उसका स्थूल रूप तो कलेवर मात्र है। इस तत्त्व - आत्मा को ही अनुष्ठानों में देवरूप में प्रतिष्ठापित और पूजित किया जाता है।

बड़े यज्ञों में कथा, अनुष्ठान, नवरात्रि पर्व, संस्कार आदि जहाँ आवश्यक लगे, पंचवेदियाँ स्थापित की जा सकती हैं।

क्रम व्यवस्था- जहाँ स्थापना की जाए, वहाँ चार कोनों पर चार चौकियाँ रखकर उन पर पीले कपड़े बिछाये जाएँ। ऊपर रँगे हुए चावलों के मंगल चिह्नबद्ध कोष्ठ बना दिये जाएँ। मध्य में सुसज्जित कलश रखे जाएँ। यह चार तत्त्वों के चार कलश हुए। मध्य पीठ को - प्रधान देवता की चौकी को आकाश कलश माना जाए।

नैर्ऋत्य (दक्षिण - पश्चिम दिशा के मध्य) में पृथ्वी वेदी (रंग हरा), ऐशान्य (उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य) में वरुण वेदी (रंग काला), आग्नेय

(पूर्व- दक्षिण दिशा के मध्य) में अग्निवेदी (रंग लाल) और वायव्य (पश्चिम- उत्तर दिशा के बीच) में वायु वेदी (रंग पीला) स्थापित की जाती है।

आकाश का कोई रंग नहीं, उसका प्रतीक सर्वतोभद्रचक्र सब रंगों से मिलाकर बनाया जाता है और ३३ कोटि देवताओं का आवाहन उसी में कर लिया जाता है। यदि सर्वतोभद्रचक्र न बनाना हो, तो उसके स्थान पर आकाश तत्त्व के लिए सफेद चावलों का अन्य तत्त्वों जैसा कोष्ठ बना देना चाहिए।

क्रिया और भावना- पाँच चौकियों पर स्थापित पाँच कलशों को एक-एक देवता का प्रतीक मानकर प्रत्येक का पूजन जल, पुष्प-अक्षत, चन्दन, नैवेद्य इन पाँच वस्तुओं से किया जाए। पाँच देवों के मन्त्र नीचे दिये गये हैं।

॥ पृथ्वी ॥

भावना करें कि इस कृत्य में संलग्न, हर क्षेत्र से सम्बद्ध, हर साधन उपकरण और पदार्थ में व्याप्त पृथ्वी तत्त्व का कण-कण इस शुभ कार्य की सफलता के लिए स्थिरता और सहनशीलता का वातावरण बना रहा है।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽ, इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ -८.३२

॥ वरुण ॥

क्षेत्र और कार्य से सम्बद्ध जल तत्त्व की हर इकाई पूजन के साथ स्नेह, संवेदना, श्रद्धा, सरलता, निर्मलता का दिव्य संचार करते हुए, दैवी प्रयोजन में भरपूर सहयोग के लिए तरंगित हो रही है।

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानः, तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश ७ँ स मा न ऽ आयुः प्रमोषीः॥ ॐ वरुणाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि॥ - १८.४९

॥ अग्नि ॥

भावना करें काया-पदार्थ अग्नितत्त्व- तेजस्, पुरुषार्थ, प्राणतत्त्व आदि को जाग्रत् करके उसे दिव्य ऊर्जा से भरपूर बना रहा है ।

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्, देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो, विश्वा द्वेषा ᳪ सि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ ॐ अग्नये नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ - २१.३

॥ वायु ॥

वायुदेव इस क्षेत्र और कार्य से सम्बद्ध अपने हर घटक को दिव्य प्रवाह, सुवास और प्राण संचार में लगाकर अपने आशीर्वाद से कृतार्थ कर रहे हैं ।

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वर ᳪ , सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ॐ वायवे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ - २७.२८

॥आकाश ॥

भावना करें कि सर्वव्यापी आकाश तत्त्व की दिव्य चेतन धाराएँ दिव्य प्रयोजन से सम्बद्ध हर प्राणी, हर पदार्थ को महत्-चेतना के अनुरूप सक्रियता की क्षमता से पूरित कर रही हैं ।

ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां, त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ॐ आकाशाय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥ - ७.११

* * *

॥ पंचभू-संस्कार ॥

सूत्र संकेत- यज्ञादि कर्मकाण्डों के अन्तर्गत भूमि को संस्कारित करने के लिए पंच भू-संस्कार करने की परिपाटी है । संक्षिप्त पूजन क्रम में षट्कर्मों के अन्तर्गत पृथ्वी पूजन करके उस भूमि में पवित्रता के संस्कार उभारे जाते हैं, उसी का थोड़ा विस्तृत क्रम पंच भू-संस्कार के रूप में किया जा सकता है । भूमि संस्कारित करने की अधिक विस्तृत प्रक्रिया इसी खण्ड में भूमि पूजन प्रकरण में दी गयी है । समय और आवश्यकता के अनुसार विवेकपूर्वक चयन किया जा सकता है ।

शिक्षण और प्रेरणा- इस संदर्भ में भूमिपूजन-प्रकरण देखें ।

क्रम व्यवस्था- पंच भू-संस्कार केवल मुख्य पूजन करने वाले व्यक्ति से कराया जा सकता है । अधिक व्यवस्था हो, तो मुख्य पूजन स्थल के साथ प्रत्येक तत्त्ववेदी के स्थल पर अथवा प्रत्येक कुण्ड पर एक व्यक्ति द्वारा एक साथ मन्त्रोच्चार के साथ यह क्रम चलाया जा सकता है ।

जितने स्थानों पर पंच भू-संस्कार कराना है, उतने स्थानों पर परिसमूहन- बुहारने के लिए कुशाएँ, लेपन के लिए गाय का गोबर, रेखांकन के लिए स्रुवा-स्फ्य या पवित्र काष्ठ का टुकड़ा तथा सिंचन के लिए जल रहना चाहिए ।

क्रिया और भावना- प्रत्येक मन्त्र में क्रिया के लिए तीन-तीन निर्देश हैं । क्रिया तीन बार प्रत्येक निर्देश के साथ की जानी चाहिए । प्रत्येक क्रिया के साथ उससे सम्बद्ध भावना का संचार किया जाना चाहिए ।

१. परिसमूहन

दाहिने हाथ में कुशाएँ लेकर तीन बार **पश्चिम से पूर्व की ओर या दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुए,** निम्न मन्त्र बोलते हुए बुहारें, भावना करें कि इस क्षेत्र में पहले से यदि कोई कुसंस्कार व्याप्त है, तो उन्हें मन्त्र और भावना की शक्ति से बुहार कर दूर किया जा रहा है । बाद में कुशाओं को पूर्व की ओर फेंक दें ।

ॐ दर्भैः परिसमूह्य, परिसमूह्य, परिसमूह्य ।

२. उपलेपन

बुहारे हुए स्थल पर गोमय (गाय के गोबर) से **पश्चिम से पूर्व की ओर को या दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुए** लेपन करें और निम्न मन्त्र बोलते रहें। भावना करें कि शुभ संस्कारों का आरोपण और उभार इस क्रिया के साथ किया जा रहा है।

ॐ गोमयेन उपलिप्य, उपलिप्य, उपलिप्य।

३. उल्लेखन

लेपन हो जाने पर उस स्थल पर स्रुवा- मूल से **तीन रेखाएँ पश्चिम से पूर्व की ओर या दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ते हुए** निम्न मन्त्र बोलते हुए खींचें, भावना करें कि भूमि में देवत्व की मर्यादा रेखा बनाई जा रही है।

ॐ स्रुवमूलेन उल्लिख्य, उल्लिख्य, उल्लिख्य।

४. उद्धरण

रेखांकित किये गये स्थल के ऊपर की मिट्टी अनामिका और अंगुष्ठ के सहकार से निम्न मन्त्र बोलते हुए पूर्व या ईशान दिशा की ओर फेंकें, भावना करें कि मर्यादा में न बाँध सकने वाले तत्त्वों को विराट् की गोद में सौंपा जा रहा है।

ॐ अनामिकांगुष्ठेन उद्धृत्य, उद्धृत्य, उद्धृत्य ।

५. अभ्युक्षण

पुनः उस स्थल पर निम्न मन्त्र बोलते हुए जल छिड़कें, भावना करें कि इस क्षेत्र में जाग्रत् सुसंस्कारों को विकसित होने के लिए सींचा जा रहा है।

ॐ उदकेन अभ्युक्ष्य, अभ्युक्ष्य, अभ्युक्ष्य।

***

॥ कुशकण्डिका ॥

सूत्र संकेत- कुश पवित्रता और प्रखरता के प्रतीक माने जाते हैं। कुशकण्डिका के अन्तर्गत निर्धारित क्षेत्र के चारों दिशाओं में कुश बिछाये जाते हैं। बड़े यज्ञों और विशिष्ट कर्मकाण्डों में यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड अथवा पूजा क्षेत्र के चारों ओर मन्त्रों के साथ कुश स्थापित किए जाते हैं।

क्रम व्यवस्था- कुश कण्डिका में प्रत्येक दिशा के लिए चार-चार कुश लिये जाते हैं। पूरे क्षेत्र को इकाई मानकर उसके चारों ओर एक ही व्यक्ति से कुश स्थापित कराने हैं, तो कुल १६ कुशाएँ चाहिए। यदि प्रत्येक कुण्ड या वेदी पर कराना है, तो प्रत्येक के लिए सोलह-सोलह कुशाएँ चाहिए।

क्रिया और भावना- कुश स्थापना करने वाले व्यक्ति एक बार में चार कुश हाथ में लें। मन्त्रोच्चार के साथ कुशाओं सहित उस दिशा में हाथ जोड़कर मस्तक झुकाएँ और एक-एक करके चारों कुशाएँ उसी दिशा में स्थापित कर दें। कुश स्थापित करते समय कुश का ऊपरी नुकीला भाग पूर्व या उत्तर की ओर रहे तथा मूल (जड़) भाग पश्चिम या दक्षिण की ओर रहे। प्रत्येक मन्त्र के साथ दिशा विशेष के लिए यही क्रम अपनाया जाए।

भावना की जाए कि इस दिशा में व्याप्त देवशक्तियों को नमस्कार करते हुए उनके सहयोग से दिव्य प्रयोजन के लिए कुशाओं जैसी पवित्रता और प्रखरता का जागरण और स्थापन किया जा रहा है।

(१) पूर्व दिशा में

ॐ प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो, रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो, नम ऽ एभ्यो अस्तु।यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ अ० ३.२७.१

(२) दक्षिण दिशा में

ॐ दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी, रक्षिता पितरऽ इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽ इषुभ्यो, नमऽ एभ्यो अस्तु।यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः। - ३.२७.२

(३) पश्चिम दिशा में

ॐ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू, रक्षितान्नमिषवः।तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽइषुभ्यो, नमऽएभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः। अथर्व ३.२७.३

(४) उत्तर दिशा में

ॐ उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः, स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमऽ इषुभ्यो, नमऽ एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं, द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

- अथर्व० ३.२७.४

* * *

॥ मेखलापूजन ॥

सूत्र संकेत- यज्ञ कुण्ड के चारों ओर मेखलाएँ बनाई जाती हैं। कुण्डों में यह सीढ़ीनुमा होती हैं। वेदी पर यज्ञ करते समय तीन रेखाएँ विनिर्मित की जाती हैं। अन्दर वाली मेखला सफेद, बीच वाली लाल तथा बाहर वाली काली होती है। इन्हें तीनों गुणों सत्, रज और तम का प्रतीक माना जाता है। संसार तीन गुणों के संयोग से बना है। यज्ञ उनके बीच सन्तुलन और चेतना को ऊर्ध्वगामी करने में समर्थ बनाने के लिए किया जाता है।

तीनों मेखलाओं में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सत्ता स्थापित करके उन्हें पूजित किया जाता है। यज्ञ एक महान् ऊर्जा है, इसे बिजली और अणु शक्ति की तरह अनुशासन तथा मर्यादा के अन्तर्गत प्रयुक्त किया जाना चाहिए, मेखलाएँ मर्यादा और अनुशासन की प्रतीक मानी जाती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश-सृजन, पालन और परिवर्तन की संयोजक देव शक्तियाँ हैं। इनके अनुरूप ही यज्ञ का विकास और प्रयोग किया जाता है।

क्रम व्यवस्था- बड़े यज्ञों में, विस्तारपूर्वक कराये जाने वाले संस्कारों आदि के समय यज्ञ में मेखलाओं का पूजन कराया जा सकता है। पूजन करने वालों के हाथ में जल, पुष्प, अक्षत, चन्दन या रोली आदि देकर मन्त्र बोले जाएँ और **आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि** के साथ सम्बन्धित मेखला पर सामग्री चढ़ा दी जाए। मन्त्र के साथ भावना रखी जाए कि त्रिदेवों की चेतना की स्थापना की जा रही है, जो हमारे यज्ञ और यज्ञीय भाव को सन्तुलित, अनुशासित और प्रभावशाली बनाने में समर्थ है।

// विष्णु पूजन (ऊपर की सफेद मेखला) //

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳ सुरे स्वाहा ।। ॐ विष्णवे नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि । -५.१५

// ब्रह्मा पूजन (बीच की लाल मेखला) //

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्, विसीमतः सुरुचो वेन ऽ आवः । सऽ बुध्न्या उपमा ऽ अस्यविष्ठाः, सतश्च योनिमसतश्च विवः ।। ॐ ब्रह्मणे नमः ।आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि ।-१३.३

// रुद्र पूजन (नीचे की काली मेखला) //

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ, उतो तऽ इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ।। ॐ रुद्राय नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि ।। - १६.१

* * *

// पंचामृतकरण //

सूत्र संकेत- गौ का महत्त्व ब्राह्मण और माँ के समान कहा गया है । उसके महत्त्व को समझने तथा उसके गुणों का लाभ उठाने के लिए धार्मिक कर्मकाण्डों के साथ पंचामृत पान का क्रम जोड़ा गया है । सामान्य क्रम में पंचामृत बनाकर रखा जाता है तथा उसका प्रसाद बनाकर वितरित किया जाता है । जहाँ कहीं उचित और आवश्यक लगे, देव पूजन के साथ पंचामृत बनाकर, भोग लगाकर पान कराया जाना चाहिए । पंचामृत बनाने और पान कराने के मन्त्र एक साथ दिये जा रहे हैं; परन्तु बनाने और पान कराने की क्रियाएँ क्रम- व्यवस्था के अनुसार अलग-अलग समय पर ही कराई जानी चाहिए ।

शिक्षा एवं प्रेरणा- प्रसाद अमृत तुल्य पौष्टिक और सुसंस्कार देने में समर्थ पदार्थों का ही बनाया जाए । उसे ही प्रभु अर्पित किया जाए और प्रसाद रूप में पान किया जाए- इसके लिए प्रतीक रूप में गोरस लिया जाता है ।

तुलसी, आँवला, पीपल, बेल की तरह गाय में दिव्यता (सतोगुण) की मात्रा अत्यधिक है। गोरस हमारे शरीर को ही नहीं, मन-मस्तिष्क और अन्तःकरण को भी उत्कृष्टता के तत्त्वों से भर देता है। गोरस केवल उत्तम आहार ही नहीं, दिव्यगुण सम्पन्न देव प्रसाद भी है। उसकी सात्त्विकता का अनुष्ठानों में समुचित समावेश होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो यज्ञ आहुतियों के लिए गो-घृत का प्रबन्ध करना चाहिए, न मिलने पर ही दूसरे घृत काम में लाने चाहिए। इसी प्रकार प्रसाद के रूप में पंचामृत को ही उसकी विशेषताओं के कारण उपयोगी मानना चाहिए। सस्ता होने की दृष्टि से भी वह सर्वसुलभ है। उपस्थिति अधिक हो जाने पर जल और शर्करा मिला देने से सहज ही बढ़ भी सकता है, यह सुविधा अन्य किसी प्रसाद में नहीं है। गौ रक्षा की दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे धर्मानुष्ठानों में गौ रक्षा का महत्त्व जनसाधारण को विदित होता रहे और उस ओर आज जो उपेक्षा बरती जा रही है, उसका अन्त हो सके। गोरस के उपयोग का प्रचलन करने से ही गौ रक्षा, गौ संवर्धन सम्भव हो सकेगा।

क्रम व्यवस्था- पंचामृत में पाँच वस्तुएँ काम में आती हैं- (१) दूध (२) दही (३) घृत (४) शहद या शक्कर (५) तुलसी पत्र। प्राचीनकाल में शहद का बाहुल्य था, इसलिए उसे मिलाते थे। आज की परिस्थितियों में शक्कर भी किसी जमाने के शहद से अनेक गुनी मँहगी है, अब शक्कर से ही काम चलाना पड़ता है। संभव हो सके, तो पाउडर का उपयोग किये बिना, बनने वाली देशी शक्कर (खाण्डसारी) को प्राथमिकता देनी चाहिए। गोरस न मिले, तो ही भैंस का दूध-दही लेना चाहिए। तुलसी पत्र प्राय: हर जगह मिल जाते हैं। धर्मानुष्ठानों पर विश्वास रखने वालों को उसे अपने घरों में स्थापित करना चाहिए।

दूध अधिक, दही कम, घी बहुत थोड़ा, शक्कर भी आवश्यकतानुसार यह सब अन्दाज से बना लेना चाहिए, इसका कोई अनुपात निश्चित नहीं किया जा सकता। तुलसी पत्र के महीन टुकड़े करके डालने चाहिए; ताकि कुछ टुकड़े हर किसी के पास जा सकें। जल भी आवश्यकतानुसार मिलाया जा सकता है। पंचामृत की सभी वस्तुएँ अलग-अलग पात्रों में रखी जाएँ। जिस पात्र में पंचामृत बनाया जाना है, उसमें एक-एक वस्तु क्रमश:

मन्त्रोच्चार के साथ डालें। यज्ञ के अन्त में प्रसाद स्वरूप यह पंचामृत दिया जाए। दाहिनी हथेली पर लोग लें। हाथ चिपचिपे हो जाते हैं, इसलिए पास ही बाल्टी-लोटा हाथ धुलाने और हाथ पोंछने के लिए तौलिया भी रखनी चाहिए।

पात्र में दूध डालने का मन्त्र

दूध के बराबर धवल और निर्मल कोई पदार्थ नहीं होता है। पंचामृत में दूध का भाग मनुष्य को निर्मल, अन्दर से दुग्धवत् धवल अर्थात् सच्चरित्र बनाने का काम करता है।

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु, पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्। - १८.३६

दही मिलाने का मन्त्र

दही शीतल तथा गाढ़ा होने से मनुष्य में सूक्ष्मरूप से गम्भीरता, शीतलता अर्थात् सन्तुलन, स्थिरता आदि सद्गुणों को बढ़ाता है।

ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं, जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽ, आयू ᳪ षि तारिषत्॥ - २३.३२

घी मिलाने का मंत्र

घी तरल, स्नेहयुक्त, सुगन्धियुक्त और गंभीरता प्रदर्शक है। इसके सेवन करने से मनुष्य का व्यवहार नम्र -स्नेहपूर्ण, प्रसन्नतादायक और शान्त बनता है। शुभ कार्यों में इसी तरह का व्यवहार अपेक्षित है।

ॐ घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः, पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिश ऽ, उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥ - ६.१९

शहद मिलाने का मन्त्र

मधु या शहद स्वास्थ्यवर्धक, रोगनिवारक, शुद्धिकारक प्राकृतिक पदार्थ होता है। मनुष्य अपने आहार-विहार में प्राकृतिक पदार्थ का अधिकाधिक उपयोग करे, इसी के लिए शहद पंचामृत में मिलाया जाता है।

पंचामृत में मधु (शहद) तथा शर्करा (खाँड़) दोनों को मिलाने

का विधान है। प्राचीन समय में शहद का ही विशेष रूप से प्रयोग होता था; पर वर्तमान परिस्थितियों में शुद्ध मधु मिलना कठिन हो गया है, इसलिए थोड़ा शहद और अधिक शर्करा भी मिलाकर काम चलाया जाता है।

ॐ मधु वाता ऽऋतायते, मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। ॐ मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिव ँ् रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता। ॐ मधुमान्नो वनस्पतिः, मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ - १३.२७-२९

तुलसी दल मिलाने का मन्त्र

तुलसी शरीर और मन को नीरोग करने वाली अद्भुत ओषधि है। उसमें दिव्य तत्त्वों की प्रधानता है। उसे पृथ्वी का अमृत माना गया है। पाँच अमृतों में तुलसी भी एक है, इसलिए इसे पंचामृत में सम्मिलित करते हैं।

ॐ या ओषधीः पूर्वा जाता, देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह ँ् , शतं धामानि सप्त च॥ - १२.७५

पञ्चामृत पान का मन्त्र

पंचामृत में अधिकांश वस्तुएँ गो-द्रव्य होती हैं, इसलिए इसे माता के पयः पान तथा भगवान् के प्रसाद के रूप में श्रद्धा, निष्ठा एवं प्रसन्नता के साथ ग्रहण करना चाहिए। इस भूलोक के प्राणियों को अमरत्व प्रदान करने वाला यही पंचामृत होता है। निम्न मन्त्र को बोलते हुए पंचामृत पान करें।

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां, स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय, मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

- ऋ० ८.१०१.१५

* * *

॥ दशविध स्नान ॥

सूत्र संकेत- दस स्नान का प्रयोग देव प्रतिमाओं की स्थापना के समय, श्रावणी उपाकर्म, वानप्रस्थ संस्कार तथा प्रायश्चित्त विधानों में किया जाता है, उनमें यह प्रकरण ले लेना चाहिए ।

क्रम व्यवस्था- यज्ञ या संस्कार स्थल से कुछ हटकर दस स्नान की व्यवस्था करनी चाहिए । इन स्नानों में (१) भस्म (२) मिट्टी (३) गोबर (४) गोमूत्र (५) गो-दुग्ध (६) गो-दधि (७) गो-घृत (८) सर्वौषधि (हल्दी) (९) कुश (१०) मधु- ये दस वस्तुएँ होती हैं । क्रमशः एक-एक वस्तु से स्नान करते समय बायीं हथेली पर भस्म आदि पदार्थ रखें, उसमें थोड़ा पानी डालें । दोनों हथेलियों से उसे मिलाएँ । मिलाते समय निर्धारित मन्त्र बोलें, फिर बायें हाथ से कमर से नीचे के अंगों पर और दायें हाथ से कमर से ऊपर के अंगों पर उसका लेपन करें । इसके बाद स्वच्छ जल से स्नान कर डालें । इसी प्रकार अन्य दस वस्तुओं से स्नान करें । इसके पश्चात् अन्तिम बार शुद्ध जल से स्नान कर शरीर को भली प्रकार पोंछ कर पीले वस्त्र धारण करें । ये दस स्नान अब तक के किये हुए पापों का प्रायश्चित्त करने तथा अभिनव जीवन में प्रवेश करने के लिए हैं । जैसे साँप केंचुली छोड़कर नई त्वचा प्राप्त करता है, वैसे इसमें पिछले ढर्रे को समाप्त करके उत्कृष्ट जीवन जीने का व्रत लेते हैं ।

भावना और प्रेरणा- (१) भस्म से स्नान की भावना यह है कि शरीर भस्मान्त है । कभी भी मृत्यु आ सकती है, इसलिए सम्भावित मृत्यु को स्मरण रखते हुए, भावी मरणोत्तर जीवन की सुख-शान्ति के लिए तैयारी आरम्भ की जा रही है । (२) मिट्टी से स्नान का मतलब है कि जिस मातृभूमि का असीम ऋण अपने ऊपर है, उससे उऋण होने के लिए देशभक्ति का, मातृभूमि की सेवा का व्रत ग्रहण किया जा रहा है । (३) गोबर से तात्पर्य है- गोबर की तरह शरीर को खाद बनाकर संसार को फलने-फूलने के लिए उत्सर्ग करना । (४) गोमूत्र क्षार प्रधान रहने से मलिनता नाशक माना गया है । रोग कीटाणुओं को नष्ट करता है ।इस स्नान में शारीरिक और मानसिक दोष-दुर्गुणों को हटाकर भीतरी और बाहरी स्वच्छता की नीति हृदयंगम करनी चाहिए । (५) दुग्ध स्नान से जीवन को दूध-सा धवल, स्वच्छ, निर्मल, सफेद, उज्ज्वल बनाने की प्रेरणा है । (६) दधि स्नान का अर्थ है- नियन्त्रित होना, दूध पतला

होने से इधर-उधर ढुलकता है, पर दही गाढ़ा होकर स्थिर बन जाता है। भाव करें - अब अपनी रीति-नीति दही के समान स्थिर रहे। (७) घृत स्नान की भावना है, चिकनाई। जीवन क्रम को चिकना-सरल बनाना, जीवन में प्यार की प्रचुरता भरे रहना। (८) सर्वौषधि (हरिद्रा) स्नान का अर्थ है- अवांछनीय तत्त्वों से संघर्ष। हल्दी रोग-कीटाणुओं का नाश करती है, शरीर-मन में जो दोष-दुर्गुण हों, समाज में जो विकृतियाँ दीखें, उनसे संघर्ष करने को तत्पर होना। (९) कुशाओं के स्पर्श का अर्थ है- तीक्ष्णतायुक्त रहना। अनीति के प्रति नुकीले, तीखे बने रहना। (१०) मधु स्नान का अर्थ है- समग्र मिठास। सज्जनता, मधुर भाषण आदि सबको प्रिय लगने वाले गुणों का अभ्यास। दस स्नानों का कृत्य सम्पन्न करने से दिव्य प्रभाव पड़ता है। उनके साथ समाविष्ट प्रेरणा से आन्तरिक उत्कर्ष में सहायता मिलती है।

१. भस्म-स्नानम्

ॐ प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
स ꣳ सृज्य मातृभिष्ट्वं, ज्योतिष्मान्पुनराऽसदः ॥ १२.३८

२. मृत्तिका स्नानम्

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पा ꣳ सुरे स्वाहा॥ - ५.१५

३. गोमय-स्नानम्

ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि, मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो, वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे। - १६.१६

४. गोमूत्र-स्नानम्

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ - ३.३५

५. दुग्ध-स्नानम्

ॐ आप्यायस्व समेतु ते, विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य संगथे। - १२.११२

६. दधि-स्नानम्

ॐ दधिक्राव्णोऽअकारिषं, जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र णऽ, आयू ꣳषि तारिषत् ॥ - २३.३२

७. घृत-स्नानम्

ॐ घृतं घृतपावानः, पिबत वसां वसापावानः । पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिशऽ आदिशो विदिशऽ, उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ - ६.१९

८. सर्वौषधि-स्नानम्

ॐ ओषधयः समवदन्त, सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्त ꣳ, राजन् पारयामसि ॥ - १२.९६

९. कुशोदक-स्नानम्

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोः, बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि, बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ - ९.३०

१०. मधु-स्नानम्

ॐ मधु वाता ऽऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । ॐ मधु नक्तमुतोषसो, मधुमत्पार्थिव ꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता । ॐ मधुमान्नो वनस्पतिः, मधुमाँ२ऽअस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ - १३.२७-२८-२९

शुद्धोदक-स्नानम्

अन्त में समग्र शुद्धता के लिए शुद्ध जल से सिंचन-स्नान किया जाए—

ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो, मणिवालस्तऽआश्विनाः, श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते, रुद्राय पशुपतये कर्णा यामाऽ, अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ - २४.३

* * *

॥ जलयात्राविधान ॥

सूत्र संकेत- जल यात्रा युग निर्माण योजना के यज्ञाभियान की एक बहुत प्रभावशाली और उपयोगी प्रक्रिया रही है। यदि जल यात्रा की व्यवस्था ठीक ढंग से की जाए , तो उससे अनेक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष लाभ होते हैं। जैसे-

*जनता को होने वाले आयोजन की भव्यता और विशालता आदि विशेषताओं की झलक मिलना।

*जन स्तर पर खुला निमन्त्रण तथा आयोजन में सम्मिलित होने के उत्साह का संचार।

*भावनासिक्त मातृ-शक्तियों द्वारा देवपूजन सहित मंगल कलश स्थापित करके आयोजन का सुसंस्कार भरा उद्घाटन।

*नारी शक्ति के जागरण, विकास और उपयोगिता की दिशा में महत्त्वपूर्ण चरण।

*धर्मघट घर-घर स्थापित कराये जाने की सरस सशक्त पृष्ठभूमि का निर्माण।

इन सब लाभों को ध्यान में रखते हुए जलयात्रा यज्ञों के अतिरिक्त नवरात्रि साधना, प्रज्ञापुराण कथा आयोजनों जैसे अन्य कार्यक्रमों के साथ भी जोड़ी जा सकती है; किन्तु समय, परिस्थिति एवं सामर्थ्य देखकर ही उसके बारे में निर्णय करना चाहिए। मात्र चिह्न-पूजा और फीके प्रदर्शन से बचना ही ठीक है। व्यवस्था और भव्यता न बन सके, तो कलश स्थापना को सामान्य रीति से यज्ञशाला या आयोजन स्थल पर ही कर लेना ठीक है।

जलयात्रा हेतु आवश्यक निर्देश-

* पर्याप्त मात्रा में मिट्टी के कलश एवं ईडली सुन्दर ढंग से रँगकर समय पर तैयार हों।

* उत्साही महिलाएँ घर-घर जाकर जलयात्रा में सम्मिलित होने के लिए बहिनों में उत्साह पैदा करें। यज्ञ का महत्त्व, उसका उद्घाटन करने का श्रेय बताना, प्राप्त होने वाले पुण्य एवं सौभाग्य का बोध कराना आदि ऐसे

ढंग हैं, जिससे इच्छित संख्या में नारियों का भावभरा सहयोग प्राप्त किया जा सकता है ।

* जुलूस को भव्य बनाने के लिए बैंड, कीर्तन- मण्डलियों, बैनर, पोस्टर झाँकियों आदि की व्यवस्था स्थिति एवं सामर्थ्य के अनुसार की जाए ।

* शिक्षित, सधे हुए स्वयंसेवकों को जुलूस व्यवस्था के लिए तैयार किया जाए , ताकि महिलाओं की सुरक्षा तथा जुलूस का अनुशासन बनाने में कठिनाई न हो ।

* जलयात्रा का मार्ग नगर के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों से होकर हो ; किन्तु इतना लम्बा न हो कि शामिल होने वाली महिलाएँ उस मार्ग को पूरा करने का श्रम सहन न कर सकें ।

* जलयात्रा जहाँ समाप्त हो, वहीं घट लाने वाली महिलाओं को प्रसाद देकर सम्मानित करने की व्यवस्था करनी चाहिए ।

क्रम व्यवस्था- जलयात्रा का मुख्य कर्मकाण्ड जलाशय पर किया जाता है । कर्मकाण्ड का क्रम नीचे दिया जा रहा है, उसमें मन्त्र सामान्य प्रकरण से देख लेने चाहिए । क्रम इस प्रकार है-

(१) पवित्रीकरण- **अपवित्रः.........** मन्त्र से स्थिति के अनुसार महिलाएँ स्वयं अपने ऊपर जल छिड़क लें अथवा स्वयंसेवक कुश या पल्लवों से सिंचन करें ।(२) पृथ्वी पूजन- **पृथ्वि त्वया...** मन्त्र बोलकर हाथ से भूमि स्पर्श के साथ नमस्कार कराएँ । (३) सर्वदेव नमस्कार (४) स्वस्तिवाचन (५) कलावा एवं तिलक (६) वरुणदेवता का आवाहन **वरुणस्योत्तम्भनमसि....** मन्त्र से कराया जाए , अक्षत- पुष्प से पूजन कराकर नमस्कार कराएँ । (७) वही मन्त्र दुहराते हुए कलशों में जल भरा जाए । (८) कलश वन्दना- **कलशस्य मुखे विष्णुः ....** मन्त्र से की जाए । उसी के साथ सभी महिलाएँ अपने-अपने कलश के कण्ठ में कलावा बाँधें और नमस्कार करें ।(९) कलशों को सिर पर रखकर जुलूस का स्वरूप बनाकर चल पड़ें । (१०) आयोजन स्थल पर पहुँचकर केवल कलशधारी महिलाओं को "**भद्रं कर्णेभिः .....**" मन्त्र से अक्षत वर्षा के साथ अन्दर प्रवेश कराएँ, गायत्री मन्त्र बोलते हुए यथास्थान रखवाएँ । (११) तत्पश्चात् आरती एवं महिलाओं का शान्ति अभिषेक **द्यौः शान्ति.....** से करके मंगल मन्त्र बोलते हुए प्रसाद दिया जाए । *

।। स्फुट प्रकरण ।।

कर्मकाण्ड में रक्षासूत्र-बन्धन, तिलक, आशीर्वाद आदि ऐसे क्रम हैं, जो कर्मकाण्ड में बराबर आते रहते हैं । सामूहिक क्रम में यह कृत्य लम्बे समय तक भी चलते हैं । उस समय मन्त्रोच्चार और प्रेरणा- व्याख्या का मिला-जुला प्रवाह चलता रहे, तो वातावरण में सौम्यता तथा प्रभाव की वृद्धि होती है । इसी दृष्टि से स्फुट प्रकरण में कुछ क्रम और उनके मन्त्र दिए जा रहे हैं । इन्हें समय-समय पर प्रयुक्त करते रहा जा सकता है ।

।। रक्षासूत्रबन्धन ।।

(१) ॐ यदाबध्नन्दाक्षायणा, हिरण्य ðöö शतानीकाय, सुमनस्य मानाः । तन्मऽआबध्नामि शत शारदाय, आयुष्मांजरदष्टिर्यथासम् । - ३४.५२

(२) ॐ येन बद्धो बलीराजा, दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वां प्रति बध्नामि, रक्षे मा चल मा चल ।।

(३) ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ।। १९.३०

।। तिलक मंत्र ।।

(१) ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽ अधूषत ।अस्तोषत स्वभानवो विप्रा, नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ।। - ३.५१

(२) ॐ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं, चरन्तं परि तस्थुषः ।रोचन्ते रोचना दिवि ।। युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी, विपक्षसा रथे ।शोणा धृष्णू नृवाहसा ।। - २३.५-६

(३) ॐ स्वस्ति नऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः , स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु । - २५.१९

(४) ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां, नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां, तामिहोपह्वये श्रियम्॥ - श्री० सू० ९

(५) ॐ दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे, सुप्रजास्त्वाय
सहसा अथोजीव शरदः शतम्॥

॥ कुशपवित्रधारण ॥

सूत्र संकेत- यह कर्म संकल्प, दान, व्रतधारण, तर्पण आदि से पूर्व कराया जाता है। इसके लिए लम्बा कुश लेकर, उसे बटकर दुहरा कर लेते हैं। उस दुहरे बटे हुए कुश खण्ड के दोनों छोर मिलाकर किनारे पर गाँठ लगा देते हैं- इस प्रकार पवित्री तैयार हो जाती है। इसे अँगूठी की तरह अनामिका अँगुली में मन्त्र के साथ पहना दिया जाता है, भावना की जाती है कि पवित्र कार्य करने के पूर्व हाथों में पवित्रता का संचार किया जा रहा है।

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः, प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण, पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य, यत्कामः पुने तच्छकेयम्॥ -१.१२,४.४

॥ आशीर्वचन ॥

**ॐ विवेकसंयुतां प्रज्ञां, दूरदृष्टिन्तथैव च।
चारित्र्यं सर्वदाऽऽदर्शं, वेदमाता प्रयच्छतु॥१॥
ब्रह्मवर्चसमास्तिक्यं, सात्मनिर्भरतां मुदा।
सज्जनताऽऽत्मविश्वासं, देवमाता ददातु ते॥२॥
सद्भविष्योज्ज्वलाकांक्षा, प्रभुविश्वासमेव च।
उच्चादर्शान्प्रति श्रद्धां, तुभ्यं यच्छतु वैष्णवी॥३॥
श्रेष्ठकर्त्तव्यनिष्ठान्ते, प्रतिभां हृष्टमानसम्।
उदारात्मीयतां तुभ्यं, विश्वमाता प्रयच्छतु॥४॥
शालीनतां च सौन्दर्यं, स्नेहसौजन्यमिश्रितम्।
ध्रुवं धैर्यं च सन्तोषं, देयात्तुभ्यं सरस्वती॥५॥**

स्वास्थ्यं मन्युमनालस्यं, सोत्साहं च पराक्रमम्।
साहसं शौर्यसम्पन्नं, महाकाली प्रवर्धताम्॥६॥
वैभवं ममतां नूनं, मैत्रीविस्तारमेव च।
शुचितां समतां तुभ्यं, महालक्ष्मी प्रयच्छतु॥७॥
स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु,
उत्साह-शौर्य-धन-धान्य-समृद्धिरस्तु।
ऐश्वर्यमस्तु बलमस्तु रिपुक्षयोऽस्तु,
वंशे सदैव भवतां हरिभक्तिरस्तु॥८॥

* * *

॥ भूमि पूजन प्रकरण ॥

सूत्र संकेत- भूमि में बीज ही नहीं संस्कार भी उपजते हैं। मरघटों के वीभत्स-चीत्कार भरे डरावने और आश्रमों के शान्त, सुरभित, मनोरम वातावरण को हर कोई स्पष्ट अनुभव कर सकता है। इस अन्तर का कारण इन स्थानों में प्रसन्नता का प्रस्फुटन है, यह इस तथ्य का प्रतीक है कि भूमि में अच्छे-बुरे संस्कार ग्रहण करने, आत्मसात् करने की विलक्षण शक्ति होती है। इसी कारण भारतीय संस्कृति में प्रत्येक कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व भूमि पूजन आवश्यक माना गया है। गायत्री शक्तिपीठें प्रज्ञा आलोक की प्रेरणा केन्द्र बनने जा रही हैं। अत: इन देवालयों में प्रारम्भ से ही वह संस्कार पैदा किये जाने चाहिए। इसके लिए भूमि पूजन समारोह अनिवार्य बना दिये गये हैं। पौरोहित्य की परम्परा की दृष्टि से भी भूमि पूजन कृत्य अपने उत्तरदायी सभी परिजनों को अवश्य जानना चाहिए। भवन बनाने के पूर्व, नये स्थान पर बड़े यज्ञादि करने के पूर्व तथा गृह प्रवेश क्रम में भी इस प्रक्रिया का उपयोग किया जा सकता है।

क्रम व्यवस्था- भूमि पूजन जहाँ करना हो, उस स्थान पर सामर्थ्य के अनुसार सुरुचि एवं स्वच्छता का वातावरण बनाना चाहिए। कर्मकाण्ड के लिए ऐसा स्थान चुनना चाहिए, जहाँ पर होने वाले पूजन-उपचार को उपस्थित

समुदाय भली प्रकार देख-सुन सके। भूमि पूजन का विशेष कर्मकाण्ड भर यहाँ दिया जा रहा है। उसके आगे-पीछे सामान्य कर्मकाण्डों की विवेकपूर्ण शृंखला जोड़ लेनी चाहिए। यदि समय हो और व्यवस्था ठीक प्रकार बनाई-सँभाली जा सके, तो यह कार्य यज्ञ सहित सम्पन्न किया जा सकता है। पहले **षट्कर्म** से लेकर **रक्षाविधान** तक का कृत्य पूरा कर लिया जाए। उसके बाद भूमि पूजन का विशेष क्रम चलाया जाए। उसके पूर्ण होने पर अग्नि स्थापना से लेकर अन्त तक के शेष कर्मकाण्ड पूरे किये जाएँ।

यदि समय और व्यवस्था की दृष्टि से यह अधिक कठिन लगे, तो **षट्कर्म** के बाद **संकल्प, सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन** कराकर भूमि पूजन कर्म कराया जाए। उसके बाद गायत्री मन्त्र बोलते हुए पाँच घी के दीपक जलाए जाएँ। अन्त में **क्षमा प्रार्थना, नमस्कार, शुभकामना, अभिषिंचन, विसर्जन** एवं **जयघोष** कराकर कार्यक्रम समाप्त किया जा सकता है। क्रम इस प्रकार है:-

(१) षट्कर्म- उपयुक्त प्रतिनिधियों को पूजा स्थान पर बिठाकर पहले षट्कर्म अर्थात् (१) पवित्रीकरण (२) आचमन (३) शिखावन्दन (४) प्राणायाम (५) न्यास (६) पृथ्वी पूजन कराये जाएँ। यदि बिठाकर षट्कर्म कराने की स्थिति न हो, तो खड़े-खड़े ही केवल पवित्रीकरण मन्त्र से सामूहिक सिंचन कराकर आगे बढ़ा जा सकता है।

(२) संकल्प- प्रतिनिधियों के हाथ में अक्षत, पुष्प, जल आदि देकर भूमि पूजन का संकल्प बोला जाए। मन्त्र बोलने के बाद पुष्प-अक्षत उसी भूमि पर चढ़ा दिये जाएँ, जिसका पूजन किया जा रहा हो।

...नामाहं पृथिवीमातुः ऋणं अपाकर्त्तुं तां प्रतिस्वकर्त्तव्यं स्मर्त्तुं अस्याः निकृष्टसंस्कार-निस्सारणार्थं श्रेष्ठसंस्कार- स्थापनार्थञ्च देवपूजनपूर्वकं सपरिजनाः श्रद्धापूर्वकं भूमिपूजनं वयं करिष्यामहे।

(३) सामान्य पूजा-उपचार- संकल्प के बाद व्यवस्थानुसार देव पूजन-स्वस्तिवाचन आदि कार्य कराए जाएँ।

(४) भूमि अभिषिंचन- शुभ कार्य के लिए जिस भूमि का प्रयोग

किया जाना है, उसमें पवित्रता के संचार के लिए यह प्रक्रिया है । एक प्रतिनिधि पात्र में पवित्र जल लेकर कुशाओं, आम्र -पल्लवों या पुष्पों से भूमि के चारों ओर छींटे लगाएँ । नीचे लिखे पाँचों मन्त्रों के साथ देवशक्तियों से उस क्षेत्र सहित सभी परिजनों के लिए पवित्रता की याचना की जाए ।

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः, पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि, जातवेदः पुनीहि मा ॥ - १९.३९

ॐ पुनाति ते परिस्रुत ‌ँ्‌ ‌, सोम ‌ँ्‌ सूर्यस्य दुहिता ।
वारेण शश्वता तना ॥ - १९.४

ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः, प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण
पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते
पवित्रपूतस्य, यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ - १.१२,४-४

ॐ पवित्रेण पुनीहि मा, शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने कृत्वा क्रतूँ१ रनु ॥ -१९.४०

ॐ पवमानः सो अद्य नः, पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥ - १९.४२

(५) **प्राण - प्रतिष्ठा एवं पूजन-** प्राणवान्-तेजस्वितायुक्त व्यक्तित्व ही अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हो सकता है और उसे हस्तगत कर सकता है । स्थान विशेष को भी प्राण-सम्पन्न बनाने के उद्देश्य से भूमि-प्राण-प्रतिष्ठा एवं पूजन का क्रम बनाया गया है । दाहिने हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर पृथ्वी पर प्राण तत्त्व संचारणार्थ निम्न मन्त्र बोलकर छोड़े जाएँ ।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽ, इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ - ८.३२

तत्पश्चात् गन्धाक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादि से पृथ्वी पूजन करें ।

ॐ गन्धाक्षतं, पुष्पाणि, धूपं, दीपं, नैवेद्यं समर्पयामि ।
ॐ श्री पृथिव्यै नमः ।

पूजन के पश्चात् दोनों हाथ जोड़कर नीचे लिखे मन्त्र बोलकर धरती माता को नमस्कार करें—

ॐ शेषमूर्ध्निस्थितां रम्यां, नानासुखविधायिनीम्।
विश्वधात्रीं महाभागां, विश्वस्य जननीं पराम्॥
यज्ञभागं प्रतीक्षस्व, सुखार्थं प्रणमाम्यहम्।
तवोपरि करिष्यामि, मंडपं सुमनोहरम्॥
क्षन्तव्यं च त्वया देवि, सानुकूला मखे भव।
निर्विघ्नं मम कर्मेदं, यथा स्यात्त्वं तथा कुरु॥ - गा० पु० प०

(६) **मांगलिक द्रव्य स्थापना-** पूजन के उपरान्त भूमि में मांगलिक द्रव्य स्थापित किये जाते हैं। यह धरती माँ के प्रति अपनी सद्भावना की अभिव्यक्ति भी है और होने वाले कार्य का शुभारम्भ भी। हम धरती माँ के आँचल में मांगलिक पदार्थ रखकर अपनी सद्भावना का परिचय देते हैं। इस कर्म के दो भाग हैं- (१) खनित्र (खोदने वाले उपकरणों) का पूजन एवं उत्खनन। (२) द्रव्य स्थापना।

सत्कार्य के लिए जो माध्यम बनते हैं, वे सम्माननीय हैं, उन्हें भी सुसंस्कारित करना चाहिए। इन भावों के साथ खनित्र पूजन करें। प्रतिनिधि दाहिने हाथ में रोली, अक्षत, पुष्प एवं जल लें, मन्त्र बोलते हुए उन्हें खनित्र पर चढ़ाएँ, साथ ही निर्धारित स्थान पर उससे छोटा-सा गड्ढा खोद लें।

ॐ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता, नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः। निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय, प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ - ३.६३

इसके बाद पाँच द्रव्य-हल्दी, दूर्वा, सुपारी, कलावा एवं अक्षत लिये जाते हैं। हल्दी शुभ, सौभाग्य एवं आरोग्यदात्री मानी जाती है। दूर्वा (दूब) विकास एवं अजरता की प्रतीक है, सुपारी स्थिर सुपरिणाम वाले फल का प्रतीक है। कलावा व्रत-संयम के बन्धन का प्रतीक एवं अक्षत श्री, समृद्धि और पूर्णता का प्रतीक माना जाता है। भूमि में इन सभी विशेषताओं की स्थापना के भाव सहित मन्त्र के साथ इन द्रव्यों को भूमि में स्थापित करें।

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २३.१

अंत में आवश्यक उद्बोधन, पूर्णाहुति, आरती आदि सम्पन्न करें।

॥ गृह प्रवेश-वास्तु शान्ति प्रयोग ॥

नये-पुराने निर्मित मकान, दुकान आदि में निवास प्रारम्भ करने के पूर्व या रहने के समय गृह प्रवेश या वास्तु शान्ति का प्रयोग सम्पन्न करना प्रायः अनिवार्य सा माना जाता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस कर्मकाण्ड की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है-

सर्वप्रथम षट्कर्म, तिलक, रक्षासूत्र, कलशपूजन, दीपपूजन, देवावाहन-पूजन, सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन, रक्षाविधान तक की प्रक्रिया पूरी करके पूजावेदी पर वास्तु पुरुष का आवाहन-पूजन सम्पन्न करें।

॥वास्तुपुरुषपूजन ॥

प्रत्येक वस्तु- पदार्थ में एक देवशक्ति सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती है, जिसे उस वस्तु-पदार्थ का अधिष्ठाता देवता कहा जाता है। इस प्रकार मकान-दुकान आदि के अधिष्ठाता देवता की अनुकूलता प्राप्त करने एवं उस स्थान की प्रतिकूलता दूर करने के लिए वास्तुपुरुष (अधिष्ठाता देवता) का अक्षत-पुष्प से आवाहन-स्थापन करें-

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीहि अस्मान्, स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व, शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

- ऋ० ७.५४.१

ॐ भूर्भुवः स्वः वास्तुपुरुषाय नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि। गन्धाक्षतं पुष्पाणि, धूपं, दीपं, नैवेद्यं समर्पयामि। ततो नमस्कारं करोमि-

ॐ विशन्तु भूतले नागाः, लोकपालाश्च सर्वतः।
मण्डलेऽत्रावतिष्ठन्तु, ह्यायुर्बलकराः सदा ॥
वास्तुपुरुष देवेश! सर्वविघ्न- विदारण।
शान्तिं कुरु सुखं देहि, यज्ञेऽस्मिन्मम सर्वदा ॥

तत्पश्चात् अग्निस्थापन, प्रदीपन आदि करते हुए २४ बार गायत्री मन्त्र की आहुति समर्पित करें। इसके बाद खीर, मिष्टान्न या केवल घृत से ५ बार विशेष आहुति समर्पित करें।

॥विशेषाहुतिः॥

१. ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीहि अस्मान्, स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत्त्वे महे प्रतितन्नो जुषस्व, शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे स्वाहा। इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ७.५४.१

२. ॐ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि, गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो। अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव, पुत्रान् प्रतिनो जुषस्व स्वाहा। इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ७.५४.२

३. ॐ वास्तोष्पते शग्मया संसदा, ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या। पाहि क्षेम उत योगे वरं नो, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः स्वाहा। इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ७.५४.३

४. ॐ अमीवहा वास्तोष्पते, विश्वा रूपाण्याविशन्। सखा सुशेव एधि नः स्वाहा॥ इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥- ऋ० ७.५५.१

५. ॐ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणां, सत्रं सोम्यानाम्। द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनाम्, इन्द्रो मुनीनां सखा स्वाहा। इदं वास्तोष्पतये इदं न मम॥ - ऋ० ८.१७.१४

तत्पश्चात् पूर्णाहुति, वसोर्धारा, आरती आदि का क्रम सम्पन्न करते हुए कार्यक्रम पूर्ण किया जाए।

* * *

॥ प्राण-प्रतिष्ठा प्रकरण ॥

सूत्र संकेत- देवालयों में प्रतिमा का पूजन प्रारम्भ करने से पूर्व उनमें प्राण- प्रतिष्ठा की जाती है । उसके पीछे मात्र परम्परा नहीं, परिपूर्ण तत्त्वदर्शन सन्निहित है । इस परम्परा के साथ हमारी सांस्कृतिक मान्यता जुड़ी है कि पूजा मूर्ति की नहीं की जाती- दिव्य सत्ता की, महत् चेतना की, की जाती है । स्थूल दृष्टि से मूर्ति को माध्यम बनाकर भी प्रमुखता उस दिव्य चेतना को ही दी जानी चाहिए । अस्तु, प्राण-प्रतिष्ठा प्रक्रिया-क्रम में जिस प्रतिमा को हम अपनी आराधना का माध्यम बना रहे हैं, उसे संस्कारित करके उसमें दिव्य-सत्ता के अंश की स्थापना का उपक्रम किया जाता है ।

यह भी एक विज्ञान है । पृथ्वी में हर जगह पानी है, बोरिंग करके पम्प द्वारा उसे एकत्रित किया जा सकता है । वायु को कम्प्रेसर पम्प द्वारा किसी पात्र में घनीभूत किया जा सकता है । लैंसों के माध्यम से सर्वत्र फैले प्रकाश को सघन करके स्थान विशेष पर एकत्रित किया जाना सम्भव है । पानी, वायु और प्रकाश की तरह परमात्म तत्त्व भी सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उसे घनीभूत करके किसी माध्यम विशेष में स्थापित करना भी एक विशिष्ट प्रक्रिया है । उसके लिए श्रद्धासिक्त कर्मकाण्ड की व्यवस्था तत्त्वदर्शियों ने बनाई है । मन्दिर एवं प्रतिमा को उस महत् सत्ता के अवतरण के उपयुक्त बनाकर उसमें उसकी स्थापना करने के लिए प्राण-प्रतिष्ठा प्रयोग किया जाता है ।

क्रम व्यवस्था- प्राण-प्रतिष्ठा के लिए यज्ञीय वातावरण बनाना आवश्यक है । अस्तु, प्राण-प्रतिष्ठा के क्रम में सामूहिक गायत्री यज्ञ का एक या अधिक दिन का आयोजन रखा जाना चाहिए । उसमें जल यात्रा से लेकर अन्यान्य कर्मकाण्ड सुविधा-व्यवस्था एवं समय का सन्तुलन बिठाते हुए किये जाने चाहिए । यज्ञीय वातावरण में प्राण-प्रतिष्ठा का कर्मकाण्ड किया जाए ।

मूर्ति स्थापना- स्थल पर पहले से रखी रहे । उसके आगे पर्दा लगा रहे । दस-स्नान एवं पूजन की सामग्री पर्दे के अन्दर पहले से तैयार रखी जाए । जितनी मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा करनी है, उतने स्वयं सेवकों-व्यक्तियों को पहले से उस कार्य के लिए नियुक्त कर लिया जाना चाहिए । वे व्यक्ति ही पर्दे के अन्दर जाकर संचालक के निर्देशानुसार प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य

करें। अच्छा हो कि यह कृत्य समझदार कुमारी कन्याओं से कराया जाए। उसके लिए उन्हें पहले से सारा क्रम समझा दिया जाना चाहिए। नीचे लिखे क्रम से कर्मकाण्ड कराया जाए।

(१) षट्कर्म- जिन्हें प्राण- प्रतिष्ठा करनी है, उन्हें प्रतिमाओं के पर्दे के बाहर आसन पर बिठाकर पहले षट्कर्म करा दिया जाए।

(२) शुद्धि सिंचन- यज्ञ के कलशों का जल अनेक पात्रों में निकाल कर रखा जाए। मन्त्र पाठ के साथ उस जल का सिंचन, उपस्थित व्यक्तियों, पूजन सामग्री, मन्दिर एवं मूर्तियों पर किया जाए।

ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवः, ता न ऽ ऊर्जे दधातन।महेरणाय चक्षसे॥ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ॐ तस्माऽअरंगमाम वो, यस्य क्षयाय जिन्वथ।आपो जनयथा च नः॥ -११.५०-५२;३६.१४-१६

(३) दशविध-स्नान- प्रारम्भ में मूर्तियों को दस- स्नान कराये जाते हैं। मूर्ति जिस पत्थर या धातु की बनी है, उसे न जाने कैसे-कैसे संस्कार के स्थान एवं व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना पड़ा होगा। उसमें सन्निहित अवाञ्छनीय कुसंस्कारों के निवारण तथा वांछित संस्कारों की स्थापना के लिए यह क्रम चलाया जाता है। इसके बाद ही प्रतिमा दैवी सत्ता की प्रतीक बनने योग्य होती है।प्रथम चार स्नान भस्म, मिट्टी, गोबर एवं गोमूत्र से होते हैं। यह अवांछनीय संस्कारों के निवारण के लिए है। कर्मकाण्ड करने वाले व्यक्ति स्नान के पदार्थ को हथेलियों में लगाकर उसे मंत्र के साथ मूर्ति पर मलें। चारों पदार्थों का प्रयोग हो जाने पर गीले वस्त्र (तौलिये) से उसे भलीप्रकार पोंछ दिया जाए। उसके बाद शेष छः पदार्थों दूध, दही, घी, सर्वौषधि, कुशोदक एवं शहद का प्रयोग इसी प्रकार किया जाए। अन्त में शुद्ध जल से स्नान करा देना चाहिए, यह जल एकत्रित करके चरणामृत के रूप में वितरित किया जा सकता है। इसके लिए शुद्ध मुलायम कपड़े से प्रयुक्त जल को सोखकर किसी पात्र में निचोड़ते रहना चाहिए, इससे जल फैलकर मन्दिर में गन्दगी एवं फिसलन का कारण भी नहीं बनेगा और चरणामृत भी सुविधापूर्वक एकत्रित हो जाएगा। इस कार्य के लिए एक

अतिरिक्त स्वयं सेवक रखा जाना चाहिए। मंत्रों एवं क्रिया की संगति बिठाते हुए भावनापूर्वक दस- स्नान का क्रम चलाया जाए।

(४) **प्राण आवाहन-** प्राण तत्त्व को दिव्य विद्युत् कह सकते हैं। कुशल इंजीनियर विद्युत् को विभिन्न स्वरूपों में प्रयुक्त करके विभिन्न कार्य कर लेते हैं। स्थूल विद्युत् के प्रवाह के नियम पदार्थ विज्ञान के अंग हैं। 'प्राण' चेतन विद्युत् है। अस्तु, उसके प्रवाह के नियमन पर चेतना विज्ञान के नियम लागू होते हैं। तीव्र भावना एवं प्रखर संकल्प द्वारा प्राण शक्ति को, स्थान-विशेष, वस्तु-विशेष की दिशा में प्रवाहित किया जा सकता है। आचार्य कर्मकाण्ड करने वाले व्यक्ति सहित सभी उपस्थित श्रद्धालु जन हाथ जोड़कर मन्त्र के साथ प्राण का आवाहन करें।

ॐ प्राणमाहुर्मातरिश्वानं, वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च, प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ - अथर्व० ११.४.१५

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं, षं सं हं लं क्षं हं सः। अस्याः गायत्रीदेवीप्रतिमायाः, प्राणाः इह प्राणाः॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं, षं सं हं लं क्षं हं सः। अस्याः प्रतिमायाः जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं, षं सं हं लं क्षं हं सः । अस्याः प्रतिमायाः सर्वेन्द्रियाणि, वाङ् मनस्त्वक् चक्षुः श्रोत्रजिह्वा, घ्राण-पाणिपादपायूपस्थानि, इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

नोट- अन्य सभी देवताओं की प्रतिष्ठा हेतु (**अस्याः शिव, राम, दुर्गा प्रतिमायाः**) प्रतिमा शब्द के पूर्व उस देवता का नाम बोलकर प्रतिष्ठा करें।

(५) **प्राण - प्रतिष्ठा हेतु न्यास-** न्यास प्रक्रिया के द्वारा प्रतिमा के विभिन्न अंगों में विभिन्न देव शक्तियों को समाविष्ट करने का विधान है। सभी उपस्थित व्यक्ति मन्त्रों के साथ यही भावना करें। कर्मकाण्ड करने वाला व्यक्ति हर उक्ति के साथ अपने दाहिने हाथ से क्रमशः उन अंगों का स्पर्श करता चले, जिनका उल्लेख मन्त्रों में किया गया है।

ॐ ब्रह्मा मूर्ध्नि। शिखायां विष्णुः। रुद्रो ललाटे। भ्रुवोर्मध्ये परमात्मा। चक्षुषोः चन्द्रादित्यौ। कर्णयोः शुक्रबृहस्पती।

नासिकयोः वायुदैवतम्। दन्तपंक्तौ अश्विनौ। उभे सन्ध्ये ओष्ठयोः। मुखे अग्निः। जिह्वायां सरस्वती। ग्रीवायां तु बृहस्पतिः। स्तनयोः वसिष्ठः। बाह्वोः मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशम् उदरे। नाभौ अन्तरिक्षम्। कट्योः इन्द्राग्नी। विश्वेदेवा जान्वोः। जङ्घायां कौशिकः। पादयोः पृथिवी। वनस्पतयोऽगुलीषु। ऋषयो रोमसु। नखेषु मुहूर्ताः। अस्थिषु ग्रहाः। असृङ्मांसयोः ऋतवः। संवत्सरो वै निमिषे। अहोरात्रं त्वादित्यश्चन्द्रमा देवता॥

तत्पश्चात् हाथ जोड़कर मन्त्र बोलें-

ॐ प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये। ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः। ॐ तत्पूर्वजयाय नमः। ॐ तत्प्रातरादित्याय नमः। ॐ तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः। गा० पु० प०

नोट- अन्य सभी देवों की प्रतिष्ठा के समय उन-उन देवताओं की स्तुति, आरती, प्रार्थना आदि की जाए।

प्राण स्थिरीकरण- न्यास के बाद सभी व्यक्ति दोनों हथेलियाँ मूर्ति की ओर करके स्थापित प्राण को स्थिर करने की भावना के साथ मंत्र बोलें।

ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु, अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥ -प्रति० म० पृ० ३५२

शोभा - शृंगार- प्राण-प्रतिष्ठा के बाद प्रतिमा को वस्त्र आभूषण पहनाये जाएँ। इस कार्य में दक्ष व्यक्तियों को इसके लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। शोभा - शृंगार में अधिक समय न लगे- इसका ध्यान रहे, अन्यथा उपस्थित जन समुदाय ऊबने लगेगा। इस क्रिया के समय मधुर स्वर से गायत्री चालीसा पाठ या किसी वन्दना के गान का क्रम चलता रहे। शृंगार हो जाने पर षोडशोपचार पूजन किया जाए।

षोडशोपचार- जिस प्रतिमा में प्राण- प्रतिष्ठा की गई है, इष्ट भाव से उसका पूजन करके अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति की जानी चाहिए। पूजन में पुरुष सूक्त के मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। इस सूक्त में परमात्मा के

विराट् रूप का वर्णन है । इस सूक्त से पूजन के साथ यह भाव तरंगित होता रहता है कि हम प्रतिमा के माध्यम से उसी विराट् सत्ता की अर्चना कर रहे हैं, जिसका वर्णन पुरुष सूक्त के मन्त्रों में है ।

आरती- षोडशोपचार पूजन समाप्त होने पर जितनी प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा की गई है, उन सभी के लिए पृथक्-पृथक् आरती सजाई जाए । आरती की तैयारी होते ही शंख, घण्टे आदि सधे हुए क्रम से बजाने प्रारम्भ कर दिये जाएँ । आरती प्रारम्भ होने के साथ ही मूर्ति के आगे लगा पर्दा हटा दिया जाए । आरती के साथ निम्न मन्त्र का सस्वर पाठ किया जाए ।

ॐ त्वं मातः सवितुर्वरेण्यमतुलं, भर्गः सुसेव्यः सदा,
यो बुद्धीर्नितरां प्रचोदयति नः, सत्कर्मसु प्राणदः ।
तद्रूपां विमलां द्विजातिभिरुपा, स्यां मातरं मानसे,
ध्यात्वा त्वां कुरु शं ममापि जगतां, सम्प्रार्थयेऽहं मुदा ॥

- गा० पु० प०

नमस्कार- आरती समाप्त होने पर सभी उपस्थित श्रद्धालुजन भावना सहित मातेश्वरी को नमस्कार करें । नमस्कार के साथ यह मन्त्र बोला जाए ।

ॐ नमस्ते देवि गायत्रि ! सावित्रि त्रिपदेऽक्षरे ।
अजरे अमरे मातः , त्राहि मां भवसागरात् ॥
नमस्ते सूर्यसंकाशे, सूर्यसावित्रिकेऽमले ।
ब्रह्मविद्ये महाविद्ये, वेदमातर्नमोऽस्तु ते ॥
अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-व्यापिनि ब्रह्मचारिणि ।
नित्यानन्दे महामाये, परेशानि नमोऽस्तु ते ॥ - गा० पु० प०

समापन- इसके पश्चात् जयघोष करके प्राण-प्रतिष्ठा का विशेष कर्मकाण्ड समाप्त किया जाए । साथ ही प्रतिमा पर पुष्पार्पण करने, आरती एवं चरणामृत वितरण की क्रम व्यवस्था बना दी जानी चाहिए । लोग पंक्ति बद्ध होकर मंदिर में प्रवेश करते रहें । पुष्प चढ़ा कर आरती लें एवं चरणामृत ग्रहण करें । यह क्रम देर तक चलता रहेगा । अस्तु , पूर्णाहुति का क्रम भी साथ ही प्रारम्भ कर लिया जाना उचित है । स्थिति एवं व्यवस्था के अनुरूप प्रसाद वितरण आदि का क्रम सम्पन्न करें ।

* * *

॥ संस्कार प्रकरण ॥

शास्त्रीय पृष्ठभूमि

व्युत्पत्तिपरक अर्थ-

सम् पूर्वक कृञ् धातु से घञ् प्रत्यय होकर संस्कार शब्द निष्पन्न होता है ।जिसका अर्थ है-

संस्करणं सम्यक्करणं वा संस्कार: अर्थात् परिष्कार करना अथवा भली प्रकार निर्माण करना 'संस्कार' है ।

'संस्कार-प्रकाश' में संस्कार शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा गया है- **समुपसर्गात् कृञो घञि निष्पन्नोऽयं संस्कार शब्दः स्वयमेव स्वलक्षणमप्यभिधत्ते। तद्यथा- आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो हीनाङ्गपूरको दोषापमार्जनकरो ऽ तिशयाधायकश्च विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष एव 'संस्कार' इत्युच्यते।**

सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय होकर निष्पन्न 'संस्कार' शब्द स्वयमेव अपना लक्षण भी प्रकट कर देता है । यथा-शरीर और आत्मा में कमी या त्रुटि को पूर्ण करते हुए, दोषों का परिमार्जन करते हुए, अतिशय गुणों का आधान करने वाले शास्त्र विहित विधि (कर्मकाण्ड) से समुद्भूत अतिशय विशेष को ही 'संस्कार' कहा जाता है । 'संस्कार' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता रहा है । मेदिनी कोश के अनुसार इसका अर्थ है- **क.** प्रतियत्न **ख.** अनुभव **ग.** मानस कर्म । सर्व प्रथम ऋग्वेद में इस शब्द का प्रयोग हुआ, जिसका अर्थ वहाँ धर्म (बरतन) की शुद्धता-पवित्रता लिया गया । तदनन्तर शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद् में इस शब्द का अर्थ निर्मलता-स्वच्छता लगाया गया । जैमिनिकृत मीमांसा सूत्र में इसका प्रयोग 'चमकाने' के अर्थ में हुआ । तब से अब तक यह शब्द अपने अर्थ और स्वरूप को काफी सारगर्भित और वैज्ञानिकता से अभिपूरित कर चुका है ।

संस्कार की परिभाषाएँ, प्रभेद एवं प्रयोजन-

मीमांसा दर्शन का भाष्य करते हुए शबरमुनि लिखते हैं- **'संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्य: कस्यचिदर्थस्य'** अर्थात्

संस्कार वह प्रक्रिया है, जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के योग्य हो जाता है। -(जै० सू० ३.१.३)

प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट कृत तन्त्र वार्तिक में कहा गया है-

'योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते' अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं।महर्षि हारीत ने लिखा है- **'द्विविधो हि संस्कारो-ब्राह्मो दैवश्च। गर्भाधानादिस्मार्तो ब्राह्मः पाक यज्ञ सौम्याश्च दैवः** - अर्थात् संस्कार दो प्रकार के होते हैं- (i) ब्राह्म संस्कार और (ii) दैव संस्कार।गर्भादानादि संस्कार, जो स्मृति ग्रन्थों द्वारा विहित हैं, ब्राह्म संस्कार कहलाते हैं और पाकयज्ञ, हवियज्ञ, सोम यागादि दैव संस्कार कहे जाते हैं।हारीत मुनि आगे लिखते हैं-

'ब्रह्मेण संस्कारेण ऋषीणां सलोकतां समानतां सायुज्यतां वा गच्छति इति। दैवेन संस्कारेण देवानां समानतां सालोक्यतां सायुज्यतां सारूप्यतां वा गच्छति।'

'ब्राह्म' संस्कार से मानव में ब्राह्मणोचित-ऋषि कल्प गुणों, उनकी समानता (समान सम्मान) उनकी समीपता अथवा उनसे युक्त होने की योग्यता का विकास होता है। 'दैव' संस्कार से देवों के समान गुणों, उनकी समीपता, उनसे युक्त होने की योग्यता अथवा उनके सदृश रूप, गुण आदि की योग्यता प्राप्त होती है।

आज जिन संस्कारों का मानव समाज में प्रचलन है, उनकी संख्या मुख्यतः सोलह मानी गयी है जैसा कि महर्षि व्यास जी ने लिखा है-

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमोऽन्न-प्राशनं वपनक्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चैव संस्काराः षोडशस्मृताः।

-व्यास स्मृति- १.१३-१४

अर्थात् गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ (विद्यारम्भ), समावर्त्तन, विवाह तथा अग्न्याधान।' अग्न्याधान के अन्तर्गत तीन अग्नियाँ (गार्हपत्य,

आहवनीय, दक्षिणाग्नि) स्थापित की जाती थीं। इन अग्नियों का व्यावहारिक उपयोग वानप्रस्थ अन्त्येष्टि और मरणोत्तर संस्कारों में होने से संस्कारों की मान्य संख्या सोलह सिद्ध हो जाती है। इन नामों में कहीं-कहीं भिन्नता भी दिखाई देती है।

आयुर्वेदिक रसायन बनाने की अवधि में ओषधियों पर कितने ही संस्कार डाले जाते हैं। कई बार कई प्रकार के रसों में उन्हें खरल किया जाता है और कई बार उन्हें गजपुट द्वारा अग्नि में जलाया- तपाया जाता है, तब कहीं वह रसायन ठीक तरह तैयार होता है और साधारण-सी राँगा, जस्ता, ताँबा, लोहा, अभ्रक जैसी कम महत्त्व की धातु चमत्कारिक शक्ति- सम्पन्न बन जाती है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य को भी समय-समय पर विभिन्न आध्यात्मिक उपचारों द्वारा सुसंस्कृत बनाने की महत्त्वपूर्ण पद्धति भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने विकसित की थी। उसका परिपूर्ण लाभ देशवासियों ने हजारों, लाखों वर्षों से उठाया है। यों किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए शिक्षा, सत्संग, वातावरण, परिस्थिति, सूझ-बूझ आदि अनेक बातों की आवश्यकता होती है। सामान्यत: ऐसे ही माध्यमों से लोगों की मनोभूमि विकसित होती है। इसके अतिरिक्त भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने मनुष्य की अन्त:भूमि को श्रेष्ठता की दिशा में विकसित करने के लिए कुछ ऐसे सूक्ष्म उपचारों का भी आविष्कार किया है, जिनका प्रभाव शरीर तथा मन पर ही नहीं सूक्ष्म अन्त:करण पर भी पड़ता है और उसके प्रभाव से मनुष्य को गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से समुन्नत स्तर की ओर उठने में सहायता मिलती है।

इस आध्यात्मिक उपचार का नाम संस्कार है। भारतीय धर्म के अनुसार संस्कार १६ प्रकार के हैं, जिन्हें 'षोडश संस्कार' कहते हैं। माता के गर्भ में आने के दिन से लेकर मृत्यु तक की अवधि में समय-समय पर प्रत्येक भारतीय धर्मावलम्बी को १६ बार संस्कारित करके एक प्रकार का आध्यात्मिक रसायन बनाया जाता था। प्राचीनकाल में प्रत्येक भारतीय इसी प्रकार का एक जीता जागता रसायन होता था। मनुष्य शरीर में रहते हुए भी उसकी आत्मा देवताओं के स्तर की बनती थी। यहाँ के निवासी 'भूसुर' अर्थात् पृथ्वी के देवता माने जाते थे। उनके निवास की यह पुण्य भूमि भारत माता

'स्वर्गादपि गरीयसी' समझी जाती थी, संस्कारवान् व्यक्तियों को तथा उनके निवास स्थान को ऐसा गौरव मिलना उचित भी था।

हमारी प्राचीन महत्ता एवं गौरव-गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय मिला था, उसमें एक बहुत बड़ा कारण यहाँ की संस्कार पद्धति को भी माना जा सकता है। यह पद्धति सूक्ष्म अध्यात्म विज्ञान की अतीव प्रेरणाप्रद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। वेद मंत्रों के सस्वर उच्चारण से उत्पन्न होने वाली ध्वनि तरंगें, यज्ञीय ऊष्मा के साथ सम्बद्ध होकर अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं, जो भी व्यक्ति इस वातावरण में एकत्र होते हैं या जिनके लिए भी उस पुण्य प्रक्रिया का प्रयोग होता है, वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों में गुण, कर्म, स्वभाव आदि की अनेक विशेषतायें प्रस्फुटित होती हैं। संस्कारों की प्रक्रिया एक ऐसी आध्यात्मिक उपचार पद्धति है, जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता। व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्यजनक सहायता मिलती देखी जाती है।

संस्कारों में जो विधि- विधान हैं, उनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनुष्य को सन्मार्गगामी होने की प्रेरणा देता है। संस्कार के मन्त्रों में अनेक ऐसी दिशायें भरी पड़ी हैं, जो उन परिस्थितियों के लिए प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी हैं। पुंसवन संस्कार के समय उच्चारण किए जाने वाले मन्त्रों में गर्भवती के लिए रहन-सहन, आहार-विहार सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण मौजूद है। इस प्रकार विवाह में दाम्पत्य जीवन की, अन्नप्राशन में भोजन-छाजन की, वानप्रस्थ में सेवापरायण जीवन की आवश्यक शिक्षायें भरी पड़ी हैं। उन्हें यदि कोई प्रभावशाली वक्ता, ठीक ढंग से समझाकर संस्कार के समय उपस्थित लोगों को बता सके, तो जिनका संस्कार से सम्बन्ध है, उन्हीं को नहीं; वरन् सुनने वाले दूसरे लोगों को भी इस सन्देश से आवश्यक कर्त्तव्यों का ज्ञान हो सकता है और वे भी जीवन को उचित दिशा में ढालने के लिए तत्पर हो सकते हैं।

परिवार को संस्कारवान् बनाने की, कौटुम्बिक जीवन को सुविकसित बनाने की, एक मनोवैज्ञानिक एवं धर्मानुमोदित प्रक्रिया को संस्कार पद्धति कहा जाता है। हर्षोत्सव के वातावरण में देवताओं की साक्षी, अग्निदेव का सान्निध्य, धर्म- भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्वजन- सम्बन्धियों की

उपस्थिति, पुरोहित द्वारा कराया हुआ धर्म कृत्य, यह सब मिल-जुलकर संस्कार से सम्बन्धित व्यक्तियों को एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था में पहुँचा देते हैं और उस समय जो प्रतिज्ञायें की जाती हैं- जो प्रक्रियायें कराई जाती हैं, वे अपना गहरा प्रभाव सूक्ष्म मन पर छोड़ती हैं और वह प्रभाव बहुधा इतना गहरा एवं परिपक्व होता है कि उसकी छाप अमिट नहीं, तो चिरस्थायी अवश्य बनी रहती है।

एक शिक्षा सामान्य ढङ्ग से रास्ता चलते, उथले 'मूड' में कह दी जाए, तो उसका प्रभाव दूसरा होगा और उसी बात को धर्म सम्मिश्रित गम्भीर वातावरण में कहा जाए, तो उसका प्रभाव अन्य प्रकार का होता है। मजाक में किसी की झूठी कसम खाई जा सकती है; पर गङ्गाजी में खड़े होकर या गङ्गाजली हाथ में लेकर गम्भीरतापूर्वक कसम खाना कुछ दूसरा ही अर्थ रखता है। व्यभिचारी लोग अपनी प्रेमिका को लम्बे चौड़े आश्वासन देते रहते हैं, उनकी कोई कीमत नहीं होती; पर विवाह संस्कार के अवसर पर सात भाँवर फिरते हुए जो वचन दिये जाते हैं, उनका वर-वधू दोनों पर ऐसा अमिट प्रभाव पड़ता है कि वे आजीवन परस्पर एक दूसरे से बँधा हुआ ही अनुभव करते रहते हैं। यों ध्यान से देखा जाए, तो उस भाँवर फिरने का कोई विशेष मूल्य दिखाई नहीं पड़ता। भाँवर फिरना, गाँठ जोड़ना, सात कदम साथ-साथ चलना इन सब बातों में साधारण से खेलकूद में होने वाले श्रम से अधिक क्या कोई विशेषता दिखाई पड़ती है ? इनमें तो और भी कम श्रम लगता है; किन्तु जिस भावना के साथ, जिस वातावरण में विवाह विधान की छोटी-छोटी विधियाँ पूरी की जाती हैं, उनकी ऐसी मनोवैज्ञानिक छाप पड़ती है कि उससे जीवनभर इन्कार नहीं किया जा सकता।

यही मनोविज्ञान सम्मत धर्म विधान अन्य सब संस्कारों के अवसर पर काम करता है। उनके द्वारा अन्तर्मन पर ऐसी छाप डाली जाती है, जो किसी व्यक्ति को सुसंस्कृत, सुविकसित, सौजन्ययुक्त एवं कर्त्तव्यपरायण बनाने में समर्थ हो सके। ऋषियों ने अपनी आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक शोधों के आधार पर इस पुण्य प्रक्रिया का निर्माण किया है। वह जितनी प्रभावशाली पूर्वकाल में थी, उतनी ही आज भी है, यदि उसे ठीक ढङ्ग से, उचित व्यवस्था के साथ, उपयुक्त वातावरण में सम्पन्न किया जाए तो।

परिष्कृत एवं सरल प्रक्रिया

प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन संस्कार पद्धतियों को आधार मानकर यह संशोधित एवं परिष्कृत प्रक्रिया प्रस्तुत की गई है । इसमें निम्न बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है,(१) संस्कार कराने में बहुत अधिक समय न लगे । (२) प्रत्येक संस्कार में आवश्यक शिक्षाओं का समुचित समावेश हो । (३) विधान ऐसा सरल हो, जिससे करने वाले को विशेष कठिनाई न हो ।

आमतौर से संस्कार पद्धति में विधान तो दिये गये हैं, पर उनकी आवश्यकता उपयोगिता एवं पृष्ठभूमि नहीं बताई गई है । इस पुस्तक में यह प्रयत्न किया गया है कि प्रतीक क्रिया के साथ-साथ यह भी बता दिया जाए कि ऐसा क्यों कराया जा रहा है ?

कोई व्यक्ति संस्कारों की संगति पदार्थ-विज्ञान से जोड़ते रहते हैं । वे कहा करते हैं, कान छेदने से बवासीर नहीं होता । मुण्डन कराने से सिर दर्द नहीं उठता । इस प्रकार के प्रतिपादन अक्सर काल्पनिक होते हैं । कोई डॉक्टर या वैज्ञानिक इसका खण्डन कर दे, तो पुरोहित को अपना कथन वापस लेना पड़ेगा । हमें झंझट में नहीं पड़ना चाहिए । कोई स्थूल लाभ होते हों, पदार्थ विज्ञान से किसी संस्कार की कोई उपयोगिता सिद्ध होती हो, तो कोई हर्ज नहीं; परन्तु उसी पर अवलम्बित होना उचित नहीं । प्रत्येक धार्मिक कर्मकाण्ड का मुख्य आधार मनोविज्ञान एवं अध्यात्म है । यह भी तो एक विज्ञान है, स्थूल विज्ञान से उसकी उपयोगित्ता एवं क्षमता किसी भी प्रकार कम नहीं, वरन् अधिक ही है । पुण्य-पाप, सदाचार-दुराचार में अन्तर करना पदार्थ विज्ञान से नहीं, धर्म- विज्ञान से ही सम्भव हो सकता है । बहिन और पत्नी का अन्तर धर्म सिखाता है-विज्ञान नहीं । इसलिए जहाँ मानवीय अन्त:करण को विकसित करने का प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ विज्ञान की कुछ उपयोगिता नहीं, वहाँ तो आस्था, विश्वास, उदारता, सद्भावना जैसी मनोवृत्तियाँ सहायक होती हैं । संस्कारों का वैज्ञानिक दृष्टि से क्या महत्त्व है ? इस पर विवाद करना व्यर्थ है । उनके आध्यात्मिक एवं मानवीय लाभ इतने अधिक हैं कि उनकी तुलना में भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में मिल सकने वाले सभी लाभ तुच्छ सिद्ध होते हैं । संस्कार पद्धति निश्चित रूप से एक विज्ञान सम्मत एवं प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाने वाली प्रक्रिया है, पर उसका

प्रतिपादन प्रयोगशालाओं के भौतिकविज्ञानियों द्वारा नहीं, वरन् आध्यात्मिक लाभों, सामाजिक सत्परिणामों एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों के द्वारा ही समझा और प्रतिपादित किया जाना चाहिए।सोलह संस्कारों में से अब सभी की उपयोगिता नहीं रही, इसलिए इन सबका वर्णन आवश्यक नहीं। जो उपयोगी हों, उन्हें यदि ठीक प्रकार मनाया जाने लगे, तो बहुत बड़ा प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए संस्कारों की संख्या इस पुस्तक में सोलह से घटाकर १० कर दी गई है। इन पर भी यदि जोर दिया जा सके, तो उसका परिणाम भी कम नहीं होगा; फिर जिन्हें सुविधा हो, वे १६ करें। उसके लिए पुरानी पद्धतियाँ मौजूद हैं। इस पुस्तक में उन्हीं संस्कारों को लिया गया है, जो आज भी उपयोगी हैं और जिन्हें करने के लिए प्रयत्न किया ही जाना चाहिए। प्रयत्न यह किया गया है कि इस प्रकार जिन संस्कारों को छोड़ना पड़ा है, उनकी महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ एवं शिक्षाएँ उन संस्कारों में जोड़ दी गई है, जिन्हें उन्हीं दिनों मनाया जाता है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त इन तीनों की प्रमुख प्रक्रिया गर्भवती के लिए नियत एक ही संस्कार में जोड़ दी गई है। जातकर्म और नामकरण का विधान सम्मिलित बना दिया गया है। विद्यारम्भ, उपनयन एवं समावर्तन का विधान एक ही यज्ञोपवीत संस्कार में है। कोई महत्त्वपूर्ण बात छूटने न पाए, इसका यथा सम्भव पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

बच्चों का नाक-कान-छेदन पुरानी परम्पराओं के अनुसार भले ही आभूषण धारण करने या शोभा शृंगार का माध्यम माना जाता रहा हो, पर आज विवेकशील क्षेत्रों में उसकी उपयोगिता स्वीकार नहीं की जाती। इतना ही नहीं स्वास्थ्य एवं सफाई की दृष्टि से उसे हानिकारक ही माना जाता है। अब शोभा शृंगार की कसौटी नाक, कान छेदना या शरीर पर लीला गुदाना नहीं रह गये हैं। इस विचार परिवर्तन के पीछे तथ्य भी है और बल भी। इसलिए कर्णवेध संस्कार को भी हटा दिया गया है। हमारे सामने परम्परा ही नहीं उपयोगिता की कसौटी भी प्रस्तुत है। उन्हीं परम्पराओं को प्रचलित रखने के हम पक्षपाती हैं, जो अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकें।

दो नये, किन्तु उपयोगी संस्कार

दो संस्कार इस पद्धति में नये बढ़ाए गए हैं ।(१) जन्मदिवसोत्सव, (२) विवाहदिवसोत्सव । इन्हें हर व्यक्ति हर साल मना सकता है । (१) मनुष्य के लिए इस संस्कार में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण उसका अपना व्यक्तित्व निर्माण ही है । अपना नाम, अपना रूप, अपना यश, अपना धन सबको प्यारा लगता है । अपना जन्मदिन भी किसी व्यक्ति के लिए उसके अवतरण की सुखद स्मृति का सबसे आनन्ददायक दिन हो सकता है । उसे हर्षोत्सव के रूप में मनाते हुए भला किसको प्रसन्नता न होगी ? बच्चों का जन्मदिन मनाने की प्रथा हमारे देश में सर्वत्र प्रचलित है । विदेशों में बड़े आदमियों का जन्मदिन भी उनके जीवन के व्यक्तिगत विशेष त्यौहार के रूप में मनाये जाने की प्रथा है । इष्ट-मित्र, स्वजन सम्बन्धी एकत्रित होकर उस दिन अपनी शुभ कामनाएँ व्यक्त करते और आमोद-प्रमोद मनाते हैं । हमारे यहाँ इसे जीवन समस्या पर विचार करने, शेष जीवन को अधिक परिष्कृत बनाने, मानव जीवन के उपलब्ध सौभाग्य पर सन्तोष अनुभव करने और स्वजन सम्बन्धियों को, इष्ट-मित्रों को इन अभिव्यक्तियों में सम्मिलित करने के रूप में मनाया जाता है ।

(२) इसी प्रकार विवाहदिवसोत्सव भी महत्त्वपूर्ण है । विवाह से ही हर व्यक्ति अपने नये परिवार एवं समाज का निर्माण करता है । आत्म-भाव को द्विगुणित करने की अद्‌भुत आध्यात्मिक क्रान्ति विवाह द्वारा ही मूर्तिमान् होती है । वह दिन हर गृहस्थ के लिए बड़ा प्रेरणाप्रद है । अनेक सामाजिक उत्तरदायित्त्व गृहस्थ के साथ ही कन्धे पर आते हैं । उन्हें गाड़ी के दो पहियों की तरह स्त्री-पुरुष मिल-जुलकर अग्रसर करते हैं । ऐसा शुभ दिन एक हर्षोल्लास के रूप में मनाया ही जाना चाहिए । उस दिन को-अतीत की स्मृति को ताजा करने वाले एक जीवन्त संस्मरण के रूप में मनाया जाना चाहिए और उन प्रतिज्ञाओं को हर वर्ष दुहराना चाहिए, जो विवाह के दिन दोनों ने गृहस्थ की सार्थकता के लिए की थीं । ऐसा करने से वैवाहिक जीवन में जिम्मेदारियों को निबाहने के लिए नई प्रेरणा एवं स्फूर्ति मिलती है ।

यह दो उत्सव हर व्यक्ति के जीवन में एक नया संदेश एवं उल्लास लेकर आते हैं । इन्हें मनाने की व्यवस्था में थोड़ा धन और समय लगे, तो चिन्ता नहीं करनी चाहिए । इसके बदले में जो मिलने वाला है, वह अधिक

महत्त्वपूर्ण एवं अधिक मूल्यवान् है । जिनके घर में और कोई हर्षोत्सव मनाने का अवसर नहीं है, उन्हें भी वर्ष में दो बार आनन्द विभोर होने एवं अपने इष्टमित्रों के साथ प्रमुदित होने का अवसर मिल सकता है । संगठन की दृष्टि से सामाजिकता, सामूहिकता एवं स्नेह- सौहार्द्र बढ़ाने की दृष्टि से भी यह आयोजन उत्तम है । इष्ट-मित्रों से बार-बार मिलना-जुलना होता रहे, तो उससे आत्मीयता बढ़ती है और यह बढ़ती हुई मैत्री कुछ न कुछ सत्परिणाम ही उत्पन्न करती है ।

युग निर्माण योजना में विवेकशील सज्जनों का संगठन सबसे पहला काम है । इन दिनों हर्षोत्सवों के माध्यम से यह उद्देश्य अधिक आसानी और तेजी से पूरा होता रह सकता है । बार-बार निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के सम्बन्ध में चर्चा करना निरर्थक नहीं कहा जा सकता है । उसका परिणाम नव-निर्माण आन्दोलन को सफल बनाने की दृष्टि से उत्साहवर्द्धक ही हो सकता है ।

संस्कारों की पद्धति परिवार प्रशिक्षण की सर्वोत्तम पद्धति है, आमतौर से घर के लोगों का असर घर वालों पर नहीं पड़ता । 'अति परिचय से अवज्ञा' वाली उक्ति के विरुद्ध कुछ सिखाना-समझाना सम्भव नहीं होता । दूसरी बात यह भी है कि कोई बात बार-बार कही जाती रहे और उसे एक ही व्यक्ति कहे, तो वह कानों के अभ्यास में आ जाती है और फिर उसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता । संस्कारों की प्रथा प्रचलित करके हम इस कमी को दूर कर सकते हैं । सुयोग्य पुरोहित या वक्ता बाहर के आदमी होते हैं, उनके तर्कपूर्ण प्रवचन प्रभावित करते हैं । फिर उस धर्मानुष्ठान के अवसर पर वातावरण एवं 'मूड' भी ऐसा लगता है कि कोई शिक्षाप्रद बात गम्भीरता से सुनी- समझी जा सके । परिवार में कई लोग होते हैं । किसी न किसी का कोई न कोई संस्कार आता ही रहता है । फिर जन्मोत्सव का भी तो क्रम चलाया जाता है । इस प्रकार साल में दो बार तो घर में संस्कार आयोजन की बात बन ही सकती है और इस बहाने परिवार के प्रशिक्षण का ठोस क्रम व्यवस्थित रूप से चलता रह सकता है । इन आयोजनों में लोगों से बहुत कुछ कहने समझने का अवसर मिल सकता है और वह प्रेरणा यदि तर्क और तथ्यपूर्ण हो, तो उसका प्रभाव एवं परिणाम होना ही चाहिए । व्यक्तियों के स्वभाव में, पारिवारिक वातावरण में एवं लोक व्यवहार में हमें अनेक सत्प्रवृत्तियों का समावेश करना है ।

रचनात्मक सत्कर्म में लोक-मानस को संलग्न करना है, उसके लिए प्रथम कार्य प्रेरणा देना ही तो है। कोई बात पहले विचार में आती है, तभी तो उसके कार्यरूप में परिणत होने का अवसर आता है। बीज बोने के बाद ही तो पौधा उगने की आशा बँधती है। विचार बीज है, तो कर्म पौधा। सत्प्रवृत्ति के रूप में सत्कर्म के बीज बोने के लिए संस्कार आयोजन पूर्णतः समर्थ होते हैं।

संस्कार-क्रम व्यवस्था

संस्कारों की व्यवस्था सामूहिक यज्ञों, साप्ताहिक यज्ञायोजनों, प्रज्ञा-संस्थानों तथा घरों पर भी की जा सकती है। प्रयास यह किया जाना चाहिए कि संस्कार कराने वालों को व्यवस्था में परेशान न होना पड़े। उपकरणों से लेकर विशेष सामग्री आदि की व्यवस्था शाखा परिजन अपनी ओर से करें। प्रज्ञा संस्थान या शाखा केन्द्र पर सभी संस्कारों से सम्बन्धित वस्तुएँ सहज क्रम में आसानी से संचित रह सकती हैं। संस्कार कराने वालों को एक-एक वस्तु के लिए बहुत समय और श्रम लगाना पड़ता है। यदि घरों पर संस्कार कराये जाएँ, तो भी उनके जिम्मे वही व्यवस्थाएँ दी जाएँ जो वे सुगमता से कर सकें। प्रज्ञा संस्थानों एवं बड़े यज्ञायोजनों में तो पूरी व्यवस्था रखी ही जाती है।

कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व सारी व्यवस्था जमा ली जाए। यदि किसी वस्तु की कमी हो, तो उसके लिए हो हल्ला मचाकर वातावरण में तनाव पैदा न किया जाए। शान्त मस्तिष्क से विचार करके यदि सहज क्रम में व्यवस्था हो सकती है, तो प्रामाणिक व्यक्ति को जिम्मेदारी सौंपकर कार्य प्रारम्भ कराया जाए। यदि व्यवस्था होती न दिखे, तो संस्कार कराने वालों के मन में अभाव का कुसंस्कार न जमने दिया जाए। चुपचाप विवेकपूर्वक उसका विकल्प मन में बना लिया जाए। किसी वस्तु के अभाव से कर्मकाण्ड में जो कमी आती है, उसकी पूर्ति सशक्तभावना तथा उल्लास भरे क्रम से हो जाती है; परन्तु अभाव के संस्कार या तनाव से भावना कुण्ठित होती है और उससे होने वाली कमी, कमी ही रह जाती है। संचालकों को भावना और उल्लास का वातावरण कायम रखने की कला में प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिए। सारी व्यवस्था जमाकर संस्कार कराने से सम्बद्ध प्रमुख पात्रों को बुलाकर नीचे लिखे क्रम से कर्मकाण्ड चलाया जाए। यह क्रम घरों या स्वतन्त्र रूप से देव स्थलों पर

संस्कार कराने की दृष्टि से बनाया गया है। सामूहिक यज्ञायोजनों में आवश्यकतानुसार थोड़ा- बहुत हेर-फेर कर लिया जा सकता है।

(१) संस्कार कराने वालों पर **भद्रं कर्णेभिः** .... मन्त्र के साथ अक्षत वर्षा करते हुए उन्हें आसन पर बिठाया जाए। यह मंत्र इसी पुस्तक में यज्ञारम्भ के स्थल पर है।

(२) यज्ञ एवं पूजन के लिए जिन्हें बिठाया गया है, उन सबको **षट्कर्म** कराया जाए।

(३) षट्कर्म के बाद संक्षेप में संस्कार का उद्देश्य और महत्त्व समझाते हुए उन्हें संकल्प कराया जाए। यज्ञ संकल्प के अनुसार.........**नामाहं** के आगे यह संकल्प जोड़ें।

श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल पाने के लिए आत्मकल्याण, लोकमंगल, वातावरण परिष्कार एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए......संस्कार का महत्त्व और उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए, देव आवाहन एवं यज्ञादि सहित संस्कार कर्म, श्रद्धा, निष्ठापूर्वक सम्पन्न करने का संकल्प हम करते हैं।

(४) संस्कार कर्म करने वालों का यज्ञोपवीत बदलवायें। यदि वह पहले से न पहने हो, तो संस्कार कर्म के लिए अस्थाई रूप से ही पहना दें। उन्हें समझा दें कि यज्ञोपवीत-व्रतबन्ध कहा जाता है। संस्कारों के लिए व्रतशील जीवन जीना चाहिए। उसके पुण्य प्रतीक रूप में यज्ञोपवीत धारण कर लें। यदि वे स्थाई उत्साह दिखायें, तो उन्हें समझा दें कि यह यज्ञोपवीत तब तक काम देगा, जब तक स्थाई संस्कार नहीं करा लेते। यज्ञोपवीत परिवर्तन के लिए मन्त्र याद न हों, तो यज्ञोपवीत संस्कार से देख लें।

बाँयें हाथ में यज्ञोपवीत देकर गायत्री मन्त्र के साथ उस पर जल के छींटे लगवाएँ। फिर निर्धारित क्रम के साथ पाँच देव शक्तियों का आवाहन करके 'धारण- मन्त्र' के साथ यज्ञोपवीत धारण करा दें।

(५) इसके बाद रक्षासूत्र-कलावा बाँधें और तिलक करें। यह कार्य आचार्य स्वयं करें या अपने किसी सहयोगी-प्रतिनिधि से करवाएँ। मंत्रादि यज्ञ प्रकरण में हैं।

(६) इतना करके संक्षिप्त हवन विधि के क्रम से रक्षाविधान तक का कर्मकाण्ड पूरा करें।

(७) रक्षाविधान के बाद संस्कार विशेष के विशिष्ट कर्मकाण्ड प्रेरक व्याख्याओं सहित सम्पन्न कराएँ। यह सब सम्बन्धित संस्कारों में दिये गये हैं। केवल विशेष आहुति एवं आशीर्वाद बाद के लिए रोक लेने चाहिए।

(८) इन कृत्यों के बाद अग्नि स्थापना से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ कराने तक का क्रम संक्षिप्त हवन विधि से चलाया जाए।

(९) अब विशेष आहुतियाँ, संस्कार की मर्यादानुसार खीर, मिष्टान्नादि से कराएँ।

(१०) विशेष आहुति के बाद स्विष्टकृत आहुति से लेकर विसर्जन के पूर्व तक के क्रम समय एवं परिस्थिति के अनुसार करा लिए जाएँ।

(११) अन्त में आशीर्वाद का क्रम भाव भरे वातावरण में किया जाए। तत्पश्चात् विसर्जन करा दिया जाए। आशीर्वाद के लिए मङ्गल मन्त्र इसी पुस्तक के पृ०११३ में दिये गये हैं। उनमें से आवश्यकतानुसार प्रयोग कर लेना चाहिए।

समय की सीमा ध्यान में रखते हुए कर्मकाण्ड तथा व्याख्याओं का संक्षेप या विस्तार कर लेना चाहिए। सन्तुलन ऐसा बनाना चाहिए कि विशेष कर्मकाण्ड तथा उससे सम्बन्धित प्रेरणाओं को उभारने के लिए पर्याप्त समय मिल जाए। जहाँ समय की कमी हो, वहाँ यज्ञ एवं कर्मकाण्ड की टिप्पणियाँ न्यूनतम करते हुए विशेष कर्मकाण्ड के लिए समय बचा लेना चाहिए।

संस्कार आयोजन के अन्तर्गत दुहरी प्रक्रिया चलती है। एक तो जिसका संस्कार है, उसके अन्तःकरण में दिव्य वातावरण में वांछित श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण किया जाता है। साथ ही उन बीजों को विकसित और फलित करने के मुख्य सूत्रों पर सबका ध्यान खींचने तथा आस्था जमाने का क्रम भी चलता है। बीजारोपण शिशुओं से लेकर वयस्कों तक में समान रूप से होता है, परन्तु उसे फलित करने के सूत्रों को विकसित मस्तिष्क ही समझ और ग्रहण कर पाते हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं को जीवन्त बनाये रखकर ही संस्कारों को प्रभावशाली बनाया जाता है। कर्मकाण्ड संचालकों को व्याख्याएँ, टिप्पणियाँ तथा समग्र प्रवाह इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर ही बनाना चाहिए। इसके विपरीत शिक्षण-प्रेरणा तथा क्रिया और भावना दोनों को ही संतुलित ढंग से उभारा जाना चाहिए। *

॥ पुंसवन संस्कार ॥

गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिए गर्भिणी का यह संस्कार किया जाता है। कहना न होगा कि बालक को संस्कारवान् बनाने के लिए सर्वप्रथम जन्मदाता माता-पिता को सुसंस्कारी होना चाहिए। उन्हें बालकों के प्रजनन तक ही दक्ष नहीं रहना चाहिए, वरन् सन्तान को सुयोग्य बनाने योग्य ज्ञान तथा अनुभव भी एकत्रित कर लेना चाहिए। जिस प्रकार मोटर चलाने से पूर्व उसके कल-पुर्जों की आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली जाती है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन आरम्भ करने से पूर्व इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी इकट्ठी कर लेनी चाहिए। अच्छा होता अन्य विषयों की तरह शिक्षा व्यवस्था में दाम्पत्य जीवन एवं शिशु निर्माण के सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रशिक्षण दिये जाने की व्यवस्था रही होती। इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति संस्कारों के शिक्षणात्मक पक्ष से भली प्रकार पूरी हो जाती है।

यों तो षोडश संस्कारों में सर्वप्रथम गर्भाधान संस्कार का विधान है, जिसका अर्थ यह है कि दम्पती अपनी प्रजनन प्रवृत्ति से समाज को सूचित करते हैं। विचारशील लोग यदि उन्हें इसके लिए अनुपयुक्त समझें, तो मना भी कर सकते हैं। प्रजनन वैयक्तिक मनोरंजन नहीं, वरन् सामाजिक उत्तरदायित्व है। इसलिए समाज के विचारशील लोगों को निमंत्रित कर उनकी सहमति लेनी पड़ती है। यही गर्भाधान संस्कार है। पूर्वकाल में यही सब होता था। आज लोगों के शरीर खोखले हो गये और सन्तानोत्पत्ति को भी वैयक्तिक मनोरंजन मान लिया, तो फिर गर्भाधान संस्कार का महत्त्व चला गया। इतने पर भी उसकी मूल भावना को भुलाया न जाए, उस परम्परा को किसी न किसी रूप में जीवित रहना चाहिए। पति-पत्नी एकान्त मिलन के साथ वासनात्मक मनोभाव न रखें, मन ही मन आदर्शवादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहें तो उसकी मानसिक छाप बच्चे की मनोभूमि पर अङ्कित होगी। लुक-छिपकर पाप कर्म करते हुए भयभीत और आशंकाग्रसित अनैतिक समागम-व्यभिचार के फलस्वरूप जन्मे बालक अपना दोष-दुर्गुण साथ लाते हैं। इसी प्रकार उस समय दोनों की मनोभूमि यदि आदर्शवादी मान्यताओं से भरी हुई हो, तो मदालसा, अर्जुन आदि की

तरह मनचाहे स्तर के बालक उत्पन्न किए जा सकते हैं। गर्भाधान संस्कार का प्रयोजन यही है। वस्तुतः वह प्रजनन-विज्ञान का आध्यात्मिक एवं सामाजिक स्थिति का मार्गदर्शन कराने वाला प्रशिक्षण ही था ।

आज संस्कारों का जबकि एक प्रकार से लोप ही हो गया है, गर्भाधान का प्रचलन कठिन पड़ता है, इसलिए उसे आज व्यावहारिक न देखकर उस पर विशेष जोर नहीं दिया गया है; फिर भी उसकी मूल भावना यथावत् है। सन्तान उत्पादन से पूर्व उपर्युक्त तथ्यों पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

संस्कार प्रयोजन- गर्भ सुनिश्चित हो जाने पर तीन माह पूरे हो जाने तक पुंसवन संस्कार कर देना चाहिए। विलम्ब से भी किया तो दोष नहीं, किन्तु समय पर कर देने का लाभ विशेष होता है। तीसरे माह से गर्भ में आकार और संस्कार दोनों अपना स्वरूप पकड़ने लगते हैं। अस्तु, उनके लिए आध्यात्मिक उपचार समय पर ही कर दिया जाना चाहिए। इस संस्कार के नीचे लिखे प्रयोजनों को ध्यान में रखा जाए।

गर्भ का महत्त्व समझें, वह विकासशील शिशु, माता-पिता, कुल परिवार तथा समाज के लिए विडम्बना न बने, सौभाग्य और गौरव का कारण बने। गर्भस्थ शिशु के शारीरिक, बौद्धिक तथा भावनात्मक विकास के लिए क्या किया जाना चाहिए, इन बातों को समझा-समझाया जाए।

गर्भिणी के लिए अनुकूल वातावरण खान-पान, आचार-विचार आदि का निर्धारण किया जाए। गर्भ के माध्यम से अवतरित होने वाले जीव के पहले वाले कुसंस्कारों के निवारण तथा सुसंस्कारों के विकास के लिए, नये सुसंस्कारों की स्थापना के लिए अपने सङ्कल्प, पुरुषार्थ एवं देव अनुग्रह के संयोग का प्रयास किया जाए।

विशेष व्यवस्था - (क) ओषधि अवघ्राण के लिए वट वृक्ष की जटाओं के मुलायम सिरों का छोटा टुकड़ा, गिलोय, पीपल की कोपल-मुलायम पत्ते लाकर रखे जाएँ। सबका थोड़ा-थोड़ा अंश पानी के साथ सिल पर पीसकर एक कटोरी में उसका घोल तैयार रखा जाए।

(ख) साबूदाने या चावल की खीर तैयार रखी जाए। जहाँ तक सम्भव हो सके, इसके लिए गाय का दूध प्रयोग करें। खीर गाढ़ी हो।

तैयार हो जाने पर निर्धारित क्रम से मंगलाचरण, षट्कर्म, सङ्कल्प,

यज्ञोपवीत परिवर्तन, कलावा-तिलक एवं रक्षाविधान तक का यज्ञीय क्रम पूरा करके नीचे लिखे क्रम से पुंसवन संस्कार के विशेष कर्मकाण्ड कराएँ।

॥ओषधि अवघ्राण॥

वट वृक्ष, विशालता और दृढ़ता का प्रतीक है। धीरे-धीरे बढ़ना धैर्य का सूचक है। इसकी जटाएँ भी जड़ और तने बन जाती हैं, यह विकास-विस्तार के साथ पुष्टि की व्यवस्था है, वृद्धावस्था को युवावस्था में बदलने का प्रयास है।

गिलोय-वृक्ष में ऊपर चढ़ने की प्रवृत्ति है।यह हानिकारक कीटाणुओं की नाशक है, शरीर में रोगाणुओं, अन्तःकरण के कुविचार-दुर्भावों, परिवार और समाज में व्याप्त दुष्टता-मूढ़ता आदि के निवारण की प्रेरणा देती है। शरीर को पुष्ट कर, प्राण ऊर्जा की अभिवृद्धि कर सत्प्रवृत्तियों के पोषण की सामर्थ्य पैदा करती है।

पीपल-देव योनि का वृक्ष माना जाता है। देवत्व के-परमार्थ के संस्कार इसमें सन्निहित हैं। उनका वरण, धारण और विकास किया जाए।

सूँघने और पान करने का तात्पर्य श्रेष्ठ संस्कारों का वरण करने, उन्हें आत्मसात् करने की व्यवस्था बनाना है। ऐसे आहार तथा दिनचर्या का निर्धारण किया जाए। श्रेष्ठ पुरुषों के प्रसंगों के अध्ययन, श्रवण, चिन्तन द्वारा गर्भिणी अपने में, अपने गर्भ में श्रेष्ठ संस्कार पहुँचाए।इस कार्य में परिजन उसका सहयोग करें।

क्रिया और भावना - औषधि की कटोरी गर्भिणी के हाथ में दी जाए। वह दोनों हाथों से उसे पकड़े।मन्त्र बोला जाए, गर्भिणी नासिका के पास औषधि को ले जाकर धीरे-धीरे श्वास के साथ उसकी गन्ध धारण करे।भावना की जाए कि ओषधियों के श्रेष्ठ गुण और संस्कार खींचे जा रहे हैं। वेदमन्त्रों तथा दिव्य वातावरण द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग मिल रहा है।

ॐ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च, विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति, तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे॥

- ३१.१७

॥ गर्भ पूजन ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - गर्भ कौतुक नहीं, एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। उसे समझा जाए और उस जिम्मेदारी को उठाने की तैयारी मानसिक तथा व्यावहारिक क्षेत्र में की जाए।

गर्भ के माध्यम से जो जीव प्रकट होना चाहता है, उसे ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर उसके लिए समुचित व्यवस्था बनाकर, उसके स्वागत की तैयारी करनी चाहिए।

गर्भ पूज्य है। कोई पूज्य व्यक्ति सामने हो, तो अपने स्वभाव तथा परस्पर के द्वेष-वैर को भुलाकर भी शालीनता का वातावरण बनाया जाता है। गर्भ के लिए भी ऐसा ही किया जाए।

गर्भ का पूजन केवल एक सामयिकता औपचारिकता न रह जाए। संस्कारित करने के लिए पूजा-उपासना का सतत प्रयोग चले। घर में आस्तिकता का वातावरण रहे। गर्भिणी स्वयं भी नियमित उपासना करे। उसे आहार और विश्राम जितना ही महत्त्वपूर्ण मानकर चलाया जाए। अधिक न बने, तो गायत्री चालीसा पाठ एवं पंचाक्षरी मंत्र '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' का जप ही कर लिया करे।

क्रिया और भावना - गर्भ पूजन के लिए गर्भिणी के घर परिवार के सभी वयस्क परिजनों के हाथ में अक्षत, पुष्प आदि दिये जाएँ। मन्त्र बोला जाए। मन्त्र समाप्ति पर एक तश्तरी में एकत्रित करके गर्भिणी को दिया जाए। वह उसे पेट से स्पर्श करके रख दे।

भावना की जाए, गर्भस्थ शिशु को सद्भाव और देव अनुग्रह का लाभ देने के लिए पूजन किया जा रहा है। गर्भिणी उसे स्वीकार करके गर्भ को वह लाभ पहुँचाने में सहयोग कर रही है।

ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो, गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छन्दा ꣳ स्यङ्गानि यजू ꣳ षि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं, यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वःपत॥ - १२.४

॥ आश्वास्तना ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा- गर्भ के माध्यम से प्रकट होने वाले जीव को अपेक्षा होती है कि उसे विकास के लिए सही वातावरण मिलेगा। जिस सत्ता ने गर्भ प्रदान किया है, वह भी उस उत्तरदायित्व को पूरा होते देखना चाहती है। दोनों को आश्वस्त किया जाना चाहिए कि उन्हें निराश नहीं होना पड़ेगा।

पहला आश्वासन गर्भिणी दे। वह अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखे। आहार-विहार, चिन्तन सही रखे। दूसरों के व्यवहार और वातावरण की शिकायत करने में समय और शक्ति न गँवाकर, धैर्यपूर्वक गर्भ को श्रेष्ठ संस्कार देने का प्रयास करे। प्रसन्न रहे, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि मनोविकारों से बचती रहे। धैर्यपूर्वक उज्ज्वल भविष्य की कामना करे।

दूसरा आश्वासन उसके पति और परिजनों की ओर से होता है। गर्भिणी माता अपने शरीर तथा रक्त-मांस से बालक का शरीर बनाती है, अपना रक्त सफेद दूध के रूप में निकाल-निकाल कर बच्चे का पोषण करती है, उसके मल-मूत्र, स्नान, वस्त्र तथा दिनचर्या की हर घड़ी साज- सँभाल रखती है। इतना भार तथा त्याग कुछ कम नहीं। माता इतना करके भी अपने हिस्से की जिम्मेदारी का बहुत बड़ा भाग पूरा कर लेती है। अब शिशु को सुसंस्कारी बनाने की उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करना, पिता का काम रह जाता है। उसे पूरा करने के लिए उतना ही त्याग करना, उतना ही कष्ट सहना और उतना ही ध्यान रखना, पिता का और परिजनों का भी कर्त्तव्य है।

सब मिलकर प्रयास करें कि गर्भ पर अभाव और कुसंस्कारों की छाया न पड़ने पाए। गर्भिणी गलत आकांक्षाएँ पास न आने दे। परिजन उसकी उचित आकांक्षाएँ जानें और पूरी करें। क्या खाना चाहती है? यही पूछना पर्याप्त नहीं, कैसा व्यवहार चाहती है? यह भी पूछा जाए, समझा जाए और पूरा किया जाए।

क्रिया और भावना- गर्भिणी अपना दाहिना हाथ पेट पर रखे। पति सहित परिवार के सभी परिजन अपना दाहिना हाथ गर्भिणी की तरफ आश्वासन की मुद्रा में उठाएँ। मन्त्र पाठ तक वही स्थिति रहे। भावना की जाए कि गर्भिणी गर्भस्थ शिशु तथा दैवी सत्ता को आश्वस्त कर रही है। सभी

परिजन उसके इस प्रयास में भरपूर सहयोग देने की शपथ ले रहे हैं। इस शुभ संकल्प में दैवी शक्तियाँ सहयोग दे रही हैं। इस श्रेष्ठ संकल्प-पूर्ति की क्षमता दे रही हैं।

ॐ यत्ते सुशीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ।
मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं, माहं पौत्रमघन्नियाम्॥

- आश्व० गृ० सू० १.१३

आश्वास्तना के बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ पूरी करने का क्रम चलाएँ। उसके बाद विशेष आहुतियाँ प्रदान करें।

॥ विशेष आहुति ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - यज्ञीय जीवन भारतीय संस्कृति की विशेष उपलब्धि है। जीवन का हर चरण एक आहुति है। कृत्य विशेष को यज्ञमय बनाने के लिए विशेष क्रम बनाने होते हैं। विशेष आहुति उसी बोध को जीवन्त बनाती हैं।

यज्ञ में पोषक, सात्त्विक पदार्थ खीर की आहुति डाली जाती है। इसी प्रकार अन्तःकरण में दूध की तरह श्वेत, कलुषरहित भावों का संचार करें। दूध में घी समाया रहता है, अपने चिन्तन एवं आचरण में स्नेह समाया रहे। गर्भिणी स्वयं भी तथा परिवार के परिजन मिलकर गर्भस्थ शिशु के लिए ऐसा ही परमार्थपरक वातावरण बनाएँ।

क्रिया और भावना- गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ हो जाने के बाद खीर की पाँच आहुतियाँ विशेष मन्त्र से की जाएँ।

भावना की जाय कि दिव्य मन्त्र शक्ति के संयोग से गर्भस्थ शिशु और सभी परिजनों के लिए अभीष्ट मंगलमय वातावरण बन रहा है।

ॐ धातादधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिताम्। वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवतः स्वाहा। इदं धात्रे इदं न मम॥

- आश्व० गृ० सू० १.१४

॥ चरु प्रदान ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - यज्ञ से बची खीर गर्भिणी को सेवन के लिये दी जाती है। यज्ञ से संस्कारित अन्न ही मन में देवत्व की वृत्तियाँ पैदा करता

है। स्वार्थ वृत्ति से स्वाद को लक्ष्य करके तैयार किया गया भोजन अकल्याणकारी होता है।

आहार प्रभु का प्रसाद बनाकर लिया जाए। बिना भोग लगाये न खाना, संयम की वृत्ति को पैदा करता है, पुष्ट करता है।

नित्य का आहार भी यज्ञीय संस्कार युक्त हो, इसके लिए घर में बलिवैश्व परम्परा डाली जानी चाहिए। गर्भिणी विशेष रूप से नित्य बलिवैश्व करके, यज्ञ का प्रसाद बनाकर ही भोजन ले।

भोजन में सात्त्विक पदार्थ हों। उत्तेजक, पेट और वृत्तियों को खराब करने वाले पदार्थ न हों। उन्हीं में रस लिया जाए।

क्रिया और भावना- विशेष आहुतियों के बाद शेष बची खीर प्रसाद रूप में एक कटोरी में गर्भिणी को दी जाए। वह उसे लेकर मस्तक से लगाकर रख ले। सारा कृत्य पूरा होने पर पहले उसी का सेवन करे।

भावना करे कि यह यज्ञ का प्रसाद दिव्य शक्ति-सम्पन्न है। इसके प्रभाव से राम-भरत जैसे नर पैदा होते हैं। ऐसे संयोग की कामना की जा रही है।

ॐ पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु, पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥ -यजु० १८.३६

॥ आशीर्वचन ॥

सारा कृत्य पूरा हो जाने पर विसर्जन के पूर्व आशीर्वाद दिया जाए। आचार्य गर्भिणी को शुभ मन्त्र बोलते हुए फल-फूल आदि दें। गर्भिणी साड़ी के आँचल में ले। अन्य बुजुर्ग भी आशीर्वाद दे सकते हैं। सभी लोग पुष्प वृष्टि करें। गर्भिणी एवं उसका पति बड़ों के चरण स्पर्श करें, सबको नमस्कार करें। विसर्जन और जयघोष करके आयोजन समाप्त किया जाए।

* * *

॥ नामकरण संस्कार ॥

संस्कार प्रयोजन- नामकरण शिशु जन्म के बाद पहला संस्कार कहा जा सकता है। यों तो जन्म के तुरन्त बाद ही जातकर्म संस्कार का विधान है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में वह व्यवहार में नहीं दीखता। अपनी पद्धति में उसके तत्त्व को भी नामकरण के साथ समाहित कर लिया गया है।

इस संस्कार के माध्यम से शिशु रूप में अवतरित जीवात्मा को कल्याणकारी यज्ञीय वातावरण का लाभ पहुँचाने का सत्प्रयास किया जाता है। जीव के पूर्व संचित संस्कारों में जो हीन हों, उनसे मुक्त कराना, जो श्रेष्ठ हों उनका आभार मानना -अभीष्ट होता है।

नामकरण संस्कार के समय शिशु के अन्दर मौलिक कल्याणकारी प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं के स्थापन, जागरण के सूत्रों पर विचार करते हुए उनके अनुरूप वातावरण बनाना चाहिए। शिशु कन्या है या पुत्र, इसके भेद-भाव को स्थान नहीं देना चाहिए। भारतीय संस्कृति में कहीं भी इस प्रकार का भेद नहीं है। शीलवती कन्या को दस पुत्रों के बराबर कहा गया है। **"दश पुत्र-समा कन्या यस्य शीलवती सुता।"** इसके विपरीत पुत्र भी कुल धर्म को नष्ट करने वाला हो सकता है। "जिमि कपूत के ऊपजे कुल सद्धर्म नसाहिं।" इसलिए पुत्र या कन्या जो भी हो, उसके भीतर के अवांछनीय संस्कारों का निवारण करके श्रेष्ठतम की दिशा में प्रवाह पैदा करने की दृष्टि से नामकरण संस्कार कराया जाना चाहिए। यह संस्कार कराते समय शिशु के अभिभावकों और उपस्थित व्यक्तियों के मन में शिशु को जन्म देने के अतिरिक्त उन्हें श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न बनाने के महत्त्व का बोध होता है। भाव भरे वातावरण में प्राप्त सूत्रों को क्रियान्वित करने का उत्साह जागता है।

आमतौर से यह संस्कार जन्म के दसवें दिन किया जाता है। उस दिन जन्म सूतिका का निवारण- शुद्धिकरण भी किया जाता है। यदि प्रसूति कार्य घर में ही हुआ हो, तो उस कक्ष को लीप-पोतकर, धोकर स्वच्छ करना चाहिए। शिशु तथा माता को भी स्नान कराके नये स्वच्छ वस्त्र पहनाये जाते हैं। उसी के साथ यज्ञ एवं संस्कार का क्रम वातावरण में दिव्यता घोलकर अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति करता है। यदि दसवें दिन किसी कारण नामकरण

संस्कार न किया जा सके। तो अन्य किसी दिन, बाद में भी उसे सम्पन्न करा लेना चाहिए। घर पर, प्रज्ञा संस्थानों अथवा यज्ञ स्थलों पर भी यह संस्कार कराया जाना उचित है।

विशेष व्यवस्था- यज्ञ पूजन की सामान्य व्यवस्था के साथ ही नामकरण संस्कार के लिए विशेष रूप से इन व्यवस्थाओं पर ध्यान देना चाहिए।

१- यदि दसवें दिन नामकरण घर में ही कराया जा रहा है, तो वहाँ समय पर स्वच्छता का कार्य पूरा कर लिया जाए तथा शिशु एवं माता को समय पर संस्कार के लिए तैयार कराया जाए।

२- अभिषेक के लिए कलश-पल्लव युक्त हो, तथा कलश के कण्ठ में कलावा बँधा हो, रोली से ॐ, स्वस्तिक आदि शुभ चिह्न बने हों।

३- शिशु की कमर में बाँधने के लिए मेखला सूती या रेशमी धागे की बनी होती है। न हो, तो कलावा के सूत्र की बना लेनी चाहिए।

४- मधु प्राशन के लिए शहद तथा चटाने के लिए चाँदी की चम्मच। वह न हो, तो चाँदी की सलाई या अँगूठी अथवा स्टील की चम्मच आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

५- संस्कार के समय जहाँ माता शिशु को लेकर बैठे, वहीं वेदी के पास थोड़ा सा स्थान स्वच्छ करके, उस पर स्वस्तिक चिह्न बना दिया जाए। इसी स्थान पर बालक को भूमि स्पर्श कराया जाए।

६- नाम घोषणा के लिए थाली, सुन्दर तख्ती आदि हो। उस पर निर्धारित नाम पहले से सुन्दर ढङ्ग से लिखा रहे। चन्दन रोली से लिखकर, उस पर चावल तथा फूल की पंखुड़ियाँ चिपकाकर, साबूदाने हलके पकाकर, उनमें रङ्ग मिलाकर, उन्हें अक्षरों के आकार में चिपकाकर, स्लेट या तख्ती पर रङ्ग - बिरङ्गी खड़िया के रङ्गों से नाम लिखे जा सकते हैं। थाली, ट्रे या तख्ती को फूलों से सजाकर उस पर एक स्वच्छ वस्त्र ढककर रखा जाए। नाम घोषणा के समय उसका अनावरण किया जाए।

७- विशेष आहुति के लिए खीर, मिष्टान्न या मेवा जिसे हवन सामग्री में मिलाकर आहुतियाँ दी जा सकें।

८- शिशु को माँ की गोद में रहने दिया जाए। पति उसके बायीं ओर बैठे। यदि शिशु सो रहा हो या शान्त रहता है, तो माँ की गोद में प्रारम्भ से

ही रहने दिया जाए। अन्यथा कोई अन्य उसे सम्भाले, केवल विशेष कर्मकाण्ड के समय उसे वहाँ लाया जाए। निर्धारित क्रम से मंगलाचरण, षट्कर्म, संकल्प, यज्ञोपवीत परिवर्तन, कलावा, तिलक एवं रक्षा- विधान तक का क्रम पूरा करके विशेष कर्मकाण्ड प्रारम्भ किया जाए।

॥अभिषेक॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - बालक तो अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ मानव शरीर में आया है, इसलिए उसके मन पर पाशविक संस्कारों की छाया रहनी स्वाभाविक है। इसको हटाया जाना आवश्यक है। यदि पशु प्रवृत्ति बनी रही, तो मनुष्य-शरीर की विशेषता ही क्या रही। जिनके अन्तःकरण में मानवीय आदर्शों के प्रति निष्ठा भावना है, उन्हीं को सच्चे अर्थों में मनुष्य कहा जा सकता है। इन्द्रिय-परायणता, स्वार्थपरता, निरुद्देश्यता, भविष्य के बारे में न सोचना, असंयम जैसे दोषों को पशुवृत्ति कहते हैं। इनका जिनमें बाहुल्य है, वे नरपशु हैं। अपना नवजात शिशु नर-पशु नहीं रहना चाहिए, उसके चिर संचित कुसंस्कारों को दूर किया ही जाना चाहिए। इस परिशोधन के लिए संस्कार मण्डप में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम बालक का अभिषेक किया जाता है।

क्रिया और भावना- सिंचन के लिए तैयार कलश में मुख्य कलश का थोड़ा- सा जल या गंगाजल मिलाएँ। मन्त्र के साथ बालक का संस्कार कराने वालों तथा उपकरणों पर उसका सिंचन किया जाए।

भावना करें कि जो जीवात्मा शिशु रूप में ईश्वर प्रदत्त सुअवसर का लाभ लेने अवतरित हुई है, उसका अभिनन्दन किया जा रहा है। ईश्वरीय योजना के अनुरूप शिशु में उत्तरदायित्वों के निर्वाह की क्षमता पैदा करने के लिए श्रेष्ठ संस्कारों तथा सत् शक्तियों के स्रोत से, उस पर अनुदानों की वृष्टि हो रही है। उपस्थित सभी परिजन अपनी भावनात्मक संगति से उस प्रक्रिया को अधिक प्राणवान् बना रहे हैं।

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवः, ता नऽऊर्जे दधातन, महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्माऽअरंगमामवो, यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जन यथा च नः॥ -३६.१४-१६

॥मेखला बन्धन॥

शिक्षण और प्रेरणा - संस्कार के लिए तैयार मेखला शिशु की कमर में बाँधी जाती है। इसे कहीं-कहीं कौंधनी, करधनी, छूटा आदि भी कहा जाता है।यह कटिबद्ध रहने का प्रतीक है। फौजी जवान, पुलिस के सिपाही कमर में पेटी बाँधकर अपनी ड्यूटी पूरी करते हैं। शरीर सुविधा की दृष्टि से उसकी अनुपयोगिता भी हो सकती है; पर भावना की दृष्टि से कमर में बँधी हुई पेटी चुस्ती, मुस्तैदी, निरालस्यता, स्फूर्ति, तैयारी एवं कर्त्तव्य- पालन के लिए तत्परता का प्रतिनिधित्व करती है। यह गुण मनुष्य का प्रारम्भिक गुण है। यदि इसमें कमी रहे तो उसे गयी-गुजरी, दीन-हीन, स्थिति में पड़े रहकर अविकसित जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। आलसी- प्रमादी व्यक्ति अपनी प्रतिभा एवं क्षमता को यों ही बर्बाद करते रहते हैं। ढीला-पोला स्वभाव आदमी को कहीं का नहीं रहने देता, उसके सब काम अधूरे और अस्त-व्यस्त रहते हैं, फलस्वरूप कोई आशाजनक सत्परिणाम भी नहीं मिल पाता।

इस दोष का बीजांकुर बच्चे में जमने न पाए, इसकी सावधानी रखने के लिए जागरूकता एवं तत्परता का प्रतिनिधित्व करने के उद्देश्य से नामकरण संस्कार के अवसर पर कमर में मेखला बाँध दी जाती है। अभिभावक जब-जब इस मेखला को देखें तब-तब यह स्मरण कर लिया करें कि बच्चे को आलस्य-प्रमाद के दोष-दुर्गुण से बचाये रखने के लिए उन्हें प्राण-पण से प्रबल्न करना है। जैसे-जैसे बच्चा समझदार होता चले, वैसे-वैसे उसके स्वभाव में मुस्तैदी, श्रमशीलता एवं काम में मनोयोगपूर्वक जुटने का गुण बढ़ाते चलना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो हानि- लाभ हो सकते हैं, उन्हें भी समय-समय पर बताते- सिखाते, समझाते रहना चाहिए।

क्रिया और भावना- मन्त्र के साथ शिशु के पिता उसकी कमर में मेखला बाँधें। भावना करें कि इस संस्कारित सूत्र के साथ बालक में तत्परता, जागरूकता, संयमशीलता जैसी सत्प्रवृत्तियों की स्थापना की जा रही है।

ॐ इयं दुरुक्तं परिबाधमाना, वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना, स्वसादेवी सुभगा मेखलेयम्।

- पार० गृ० सू० २.२.८

॥मधु प्राशन॥

शिक्षण और प्रेरणा- इसमें बालक को निर्धारित उपकरण से शहद चटाया जाता है ।शहद चटाने में मधुर भाषण की शिक्षा का समावेश है । सज्जनता की पहचान किसी व्यक्ति की वाणी से ही होती है । शालीनता की परख मधुर, नम्र, प्रिय, शिष्टता से भरी हुई वाणी को सुनकर ही की जा सकती है । इसी गुण के आधार पर दूसरों का स्नेह, सद्‌भाव एवं सहयोग प्राप्त होता है । वशीकरण मन्त्र मधुर भाषण ही होता है । कोयल की प्रशंसा और कौए की निन्दा उनका रङ्ग-रूप एकसा होने पर भी वाणी सम्बन्धी अन्तर के कारण ही होती है ।चाँदी-रजत सफेद, शुभ्र होती है । उसे पवित्रता-निर्विकारिता का प्रतीक माना जाता है । पवित्रता, निर्विकारिता के आधार पर वाणी में मधुरता हो, स्वार्थी- धूर्तों जैसी न हो- इसलिए चाँदी का प्रतीक प्रयुक्त होता है ।

क्रिया और भावना- मन्त्रोच्चार के साथ थोड़ा- सा शहद निर्धारित उपकरण से बालक को चटाया जाए। घर के किसी बुजुर्ग या उपस्थित समुदाय में से किन्हीं चरित्र निष्ठ संभ्रांत व्यक्ति द्वारा भी यह कार्य कराया जा सकता है । भावना की जाए कि सभी उपस्थित परिजनों के भाव संयोग से बालक की जिह्वा में शुभ, प्रिय, हितकारी, कल्याणप्रद वाणी के संस्कार स्थापित किये जा रहे हैं ।

ॐ प्रते ददामि मधुनो घृतस्य, वेदं सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्।
आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः, शतं जीव शरदो लोके अस्मिन्।

-आश्व० गृ० सू० १.१५.१

॥ सूर्य नमस्कार ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - सूर्य गतिशीलता, तेजस्विता प्रकाश एवं उष्णता का प्रतीक है । उसकी किरणें इस संसार में जीवन-संचार करती हैं । बालक में भी इन गुणों का विकास होना चाहिए । सूर्य निरन्तर चलता रहता है, उसे विश्राम का अवकाश नहीं, अपने कर्त्तव्य से एक क्षण के लिए भी विमुख नहीं होता । न बहुत जल्दबाजी, उतावली करता है और न थककर शिथिलता,

उदासीनता, उपेक्षा बरतता है। जो कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया, उस पर पूर्ण दृढ़ता एवं समस्वरता के साथ चलता रहता है। मनुष्य की क्रिया पद्धति भी यही होनी चाहिए। जो पक्ष चुन लिया, जो कार्यक्रम अपना लिया, उसमें न तो शिथिलता बरतनी चाहिए और न ही अधीर होकर उतावली, जल्दी करनी चाहिए। धैर्य, स्थिरता और दृढ़ निश्चय के साथ निरन्तर आगे चलते रहना है। सूर्यदर्शन के साथ बालक को यह प्रेरणा दी जाती है कि उसे भावी जीवन में आलसी, ढीला-पोला या अनियमित नहीं बनना है। नियमितता, लगन, परिश्रम के द्वारा ही वह कुछ कर सकेगा, इसलिए सूर्य को वह देखे और उसकी रीति-नीति का अनुसरण करे।अभिभावक शिशु के मन- मस्तिष्क के पूर्ण विकास के लिए उत्तम प्रेरणाएँ एवं साधन प्रदान करते रहें।

क्रिया और भावना - यदि सूर्य को देखने की स्थिति हो, तो माता शिशु को बाहर ले जाकर सूर्य दर्शन कराए। सूर्यदेव को नमस्कार करें। किसी कारण संस्कार के समय सूर्य दृश्यमान न हो, तो उनका ध्यान करके नमस्कार करें।भावना की जाए कि माँ अपने स्नेह के प्रभाव से बालक में तेजस्विता के प्रति आकर्षण पैदा कर रही है, बालक में तेजस्वी जीवन के प्रति सहज अनुराग पैदा हो रहा है। इसे सब मिलकर स्थिर रखेंगे, बढ़ाते रहेंगे।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शत ꣳ, शृणुयाम शरदः शतं, प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः, स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्॥ - ३६.२४

॥भूमि पूजन-स्पर्शन॥

शिक्षण और प्रेरणा - बालक को सूतक के दिनों में जमीन पर नहीं बिठाते। नामकरण के बाद उसे भूमि पर बिठाते हैं, इससे पूर्व धरती का पूजन किया जाता है। प्रथम बार उस सम्पूजित भूमि पर बालक को बिठाते हैं। भूमि को लीपकर चौक पूरते हैं और उसका अक्षत, पुष्प, गन्ध, धूप आदि से पूजन करते हैं।भूमि को केवल मिट्टी ही न मानकर उसे देवभूमि, जन्मभूमि, धरती माता, भारतमाता मानकर सदैव उसके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय देना चाहिए। विश्व-माता, प्राणि-माता, भारत- माता, धरती-माता का

वही सम्मान होना चाहिए, जो शरीर को जन्म देने वाली माता का होता है। अपनी सगी माता की तरह मातृभूमि की सेवा के लिए भी मनुष्य के मन में भावनाएँ रहनी चाहिए। मातृभूमि, विश्व वसुधा की रक्षा और सेवा के लिए जिससे जितना त्याग एवं प्रयत्न बन सके, करना चाहिए।

देशभक्ति से मतलब समाज सेवा से ही है। देशवासी, साथी और सहयोगियों की सुविधा के लिए कुछ कार्य करना चाहिए। अपना पेट पालने, अपनी ही उन्नति और सुविधा चाहने की प्रवृत्ति ओछे लोगों में पाई जाती है। श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी आन्तरिक महानता के अनुरूप घर तक ही अपनी ममता सीमित नहीं रखते, वरन् उसे व्यापक बनाते हैं। सुदूरवर्ती व्यक्ति भी अपने ही बन्धुबान्धव प्रतीत होते हैं और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की निष्ठा जम जाती है। ऐसे देशभक्त व्यक्ति, समाज सेवा एवं लोकमङ्गल के कार्यों को अपने निजी लाभ एवं स्वार्थ से भी बढ़कर मानते हैं, इन्हीं की यशोगाथा इस संसार को सुरक्षित करती रहती है। भूमि स्पर्श करते हुए बालक को मातृभूमि की सेवा देशभक्ति की भावनाएँ जाग्रत् करने की शिक्षा दी जाती है।

धरती माता की क्षमाशीलता प्रसिद्ध है। वह सबका भार अपने ऊपर उठाती है, अपनी छाती में अन्न, फल, रस, खनिज आदि विविध-विध पदार्थ उपजाकर प्राणियों का पालन करती है। लोग मल-मूत्र आदि से उसे गन्दा करते हैं, तो भी रुष्ट नहीं होती और वह सब सहन करती है। अपना अधिकांश भाग जल की शीतलता से भरे रहती है। विशाल सम्पदा की स्वामिनी होने पर इतराती नहीं, पुरुषार्थियों को उदारतापूर्वक अपनी सम्पत्ति का उपहार देती है। अपनी सभी सन्तानों को गोदी में लेकर अपनी निश्चित रीति-नीति के अनुसार गतिशील रहती है। भीतरी अग्नि को भीतर ही छिपी रहने देती है और बाहर से ठण्डी ही रहती है। भूमि में से पौधे आहार खींचते और बढ़ते हैं; परन्तु माली उनकी बाढ़ को सही दिशा देने के लिए उनकी साज-सँभाल के साथ-साथ काट-छाँट भी करता है। मातृभूमि के अनुदानों से बालक के विकास में भी माली जैसी सावधानी अभिभावकों को बरतनी चाहिए।

क्रिया और भावना - शिशु के माता-पिता हाथ में रोली, अक्षत, पुष्प आदि लेकर मन्त्र के साथ भूमि का पूजन करें। भावना की जाए कि धरती माता से इस क्षेत्र में बालक के हित के लिए श्रेष्ठ संस्कारों को घनीभूत करने

की प्रार्थना की जा रही है। अपने आवाहन-पूजन से उस पुण्य-प्रक्रिया को गति दी जा रही है। मन्त्र पूरा होने पर पूजन सामग्री भूमि पर चढ़ाई जाए।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽ, इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, पूजयामि, ध्यायामि। - ८.३२

स्पर्श क्रिया और भावना - माता बालक को मन्त्रोच्चार के साथ उस पूजित भूमि पर लिटा दे।सभी लोग हाथ जोड़कर भावना करें कि जैसे माँ अपनी गोद में बालक को अपने स्नेह-पुलकन के साथ जाने-अनजाने में श्रेष्ठ प्रवृत्ति और गहरा सन्तोष देती रहती है-वैसे ही माता वसुन्धरा इस बालक को अपना लाल मानकर गोद में लेकर धन्य बना रही है।

ॐ स्योना पृथिवि नो, भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम्॥ - ३५.२१

॥ नाम घोषणा ॥

शिक्षण एवं प्रेरणा - यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य को जिस तरह के नाम से पुकारा जाता है, उसे उसी प्रकार की छोटी-सी अनुभूति होती रहती है। यदि किसी को कूड़ेमल, घूरेमल, नकछिद्दा, नत्थो, घसीटा आदि नामों से पुकारा जायेगा, तो उसमें हीनता के भाव ही जागेंगे। नाम सार्थक बनाने की कई हलकी, अभिलाषाएँ मन में जगती रहती हैं। पुकारने वाले भी किसी के नाम के अनुरूप उसके व्यक्तित्व की हल्की या भारी कल्पना करते हैं। इसलिए नाम का अपना महत्त्व है। उसे सुन्दर ही चुना और रखा जाए।

बालक का नाम रखते समय निम्न बातों का ध्यान रखें।

(१) गुणवाचक नाम रखे जाएँ जैसे-सुन्दरलाल, सत्यप्रकाश, धर्मवीर, मृत्युंजय, विजयकुमार, तेजसिंह, शूरसिंह, विद्याभूषण, ज्ञानप्रकाश, विद्याराम आदि। इसी तरह बालिकाओं के नाम-दया, क्षमा, प्रभा, करुणा, प्रेमवती, सुशीला, माया, शान्ति, सत्यवती, प्रतिभा, विद्या आदि।

(२) महापुरुषों एवं देवताओं के नाम पर भी बच्चों के नाम रखे जा

सकते हैं। जैसे रामअवतार, कृष्णचन्द्र, शिवकुमार, गणेश, सवितानन्दन, विष्णुप्रसाद, लक्ष्मण, भरत, याज्ञवल्क्य, पाराशर, सुभाष, रवीन्द्र, बुद्ध, महावीर, हरिश्चन्द्र, दधीचि आदि। लड़कियों के नाम-कौशल्या, सुमित्रा, देवकी, पार्वती, दमयन्ती, पद्मावती, लक्ष्मी, कमला, सरस्वती, सावित्री, गायत्री, मदालसा, सीता, उर्मिला, अनसूया आदि।

(३) प्राकृतिक विभूतियों के नाम पर भी बच्चों के नाम रखे जा सकते हैं। जैसे-रजनीकान्त, अरुणकुमार, रत्नाकर, हिमाचल, घनश्याम, वसन्त, हेमन्त, कमल, गुलाब, चन्दन, पराग आदि। लड़कियों के नाम-उषा, रजनी, सरिता, मधु, गंगा, यमुना, त्रिवेणी, वसुन्धरा, सुषमा आदि। लड़की और लड़कों के नामों की एक बड़ी लिस्ट बनाई जा सकती है, उसी में से छाँटकर लड़के और लड़कियों के उत्साहवर्धक, सौम्य एवं प्रेरणाप्रद नाम रखने चाहिए। समय-समय पर बालकों को यह बोध भी कराते रहना चाहिए कि उनका यह नाम है, इसलिए गुण भी अपने में वैसे ही पैदा करने चाहिए।

क्रिया और भावना - मन्त्रोच्चार के साथ नाम से सज्जित थाली या तख्ती पर से वस्त्र हटाया जाए। सबको दिखाया जाए। यह कार्य आचार्य या कोई सम्माननीय व्यक्ति करे। भावना की जाए कि यह घोषित नाम ऐसे व्यक्तित्व का प्रतीक बनेगा, जो सबका गौरव बढ़ाने वाला होगा।

ॐ मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती।
मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ॥ -आश्व० गृ० १.१५.२

मन्त्र पूरा होने पर सबको नाम दिखाएँ और तीन नारे लगवाएँ-

(प्रमुख कहे) (सब कहें)

१. शिशु........ चिरंजीवी हो। (तीन बार कहें)
२ शिशु.......... धर्मशील हो।(")
३ शिशु.......... प्रगतिशील हो।(")

॥ परस्पर परिवर्तन॥

शिक्षण और प्रेरणा - माता अपने रक्त-मांस से उदरस्थ बालक के शरीर का निर्माण करती है। अपना श्वेत रक्त-दूध पिलाकर उसका पालन करती है, इसलिए इस उत्पादन में उसका श्रेय अधिक है। बालक माता के

समीप ही अधिक रहता है, इसलिए उसके क्रिया-कलापों एवं भावनाओं से प्रेरणा भी अधिक लेता है, यह बात ठीक है; पर साथ ही यह भी निश्चित है कि अकेली माता उसका सर्वांगीण विकास कर सकने में समर्थ नहीं हो सकती। आहार, चिकित्सा, खेल, शिक्षा, संस्कार आदि का बहुत कुछ उत्तरदायित्व परिवार के अन्य लोगों पर भी समान रूप से है। इस परिवर्तन की क्रिया द्वारा घर के सभी लोग क्रमशः बालक को अपनी गोदी में लेते हैं और यह उत्तरदायित्व अनुभव करते हैं कि इस बालक के स्वस्थ विकास में सभी शक्ति भर योगदान करेंगे। वेशक माता के बाद अधिक उत्तरदायित्व पिता पर आता है; पर घर के अन्य सदस्य भी उससे मुक्त नहीं रह सकते। साझे की खेती की तरह बालकों के निर्माण में घर के सब लोगों का समान योगदान रहना चाहिए।

क्रिया और भावना - मन्त्रोच्चारण प्रारम्भ के साथ माता बालक को पहले उसके पिता की गोद में दे। पिता अन्य परिजनों को दे। शिशु एक-दूसरे के हाथ में जाता स्नेह-दुलार पाता हुआ पुनः माँ के पास पहुँच जाए। भावना की जाए कि बालक सबका स्नेह पात्र बन रहा है, सबके स्नेह-अनुदानों का अधिकार पा रहा है।

ॐ अथ सुमंगल नामानंश्ह्वयति,बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेति।
यऽएव वन्नामाभवति,कल्याणमेवैतन्मानुष्यै वाचो वदति॥

॥ लोक दर्शन ॥

शिक्षण और प्रेरणा - कोई वयोवृद्ध व्यक्ति बच्चे को गोदी में लेकर घर से बाहर ले जाते हैं और उसे बाहर का खुला संसार, खुला वातावरण दिखाते हैं। बालक घर में ही कूपमण्डूक न बना रहे, वरन् वह जगती के विस्तृत प्रांगण में भी अपने को गतिशील बनाए, प्रकृति की गोद में रहे, विशाल वातावरण में बढ़े, इसके लिए बाहर खुले वातावरण में उसे घुमाया जाता है। विनोद, क्रीड़ा एवं ज्ञान संवर्धन द्वारा सर्वांगीण विकास का द्वार खोला जाता है। यह संसार विराट् ब्रह्म है। इसे प्रत्यक्ष परमेश्वर समझना चाहिए। भगवान् राम ने कौशल्या और काकभुशुण्डि को एवं भगवान् कृष्ण ने यशोदा तथा अर्जुन को विराट् रूप दिखाते हुए विश्व ब्रह्माण्ड का ही साक्षात्कार कराया

था, जो इस जगत् को ईश्वर की विशाल शक्ति के रूप में देखने लगा, समझना चाहिए कि उसने ईश्वर का दर्शन कर लिया ।

क्रिया और भावना - मन्त्रोच्चारण के साथ नियुक्त व्यक्ति उसे गोद में उठायें-खुले में जाकर विभिन्न दृश्य दिखाकर ले आएँ । भावना की जाए कि बालक में इस विराट् विश्व को सही दृष्टि से देखने, समझने एवं प्रयुक्त करने की क्षमता देव अनुग्रह और सद्भावना के सहयोग से प्राप्त हो रही है ।

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे , भूतस्य जातः पतिरेकऽ आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां, कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

-१३.४

इसके बाद अग्नि स्थापन से लेकर गायत्री मन्त्र की आहुतियाँ पूरी करने का क्रम चलाया जाए, तब विशेष आहुतियाँ दी जाएँ ।

॥ विशेष आहुति ॥

क्रिया और भावना - हवन सामग्री के साथ निर्धारित मेवा-मिष्टान्न खीर आदि मिलाकर पाँच आहुतियाँ नीचे लिखे मन्त्र से दी जाएँ । भावना की जाए कि विशेष उद्देश्य के लिए विशेष वातावरण का निर्माण हो रहा है ।

ॐ भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः, पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयं स्वाहा । इदम् अग्नये पवमानाय इदं न मम ।

—ऋ० ९.६६.२०

॥ बाल प्रबोधन ॥

शिक्षण और प्रेरणा - शिशु के विकास के लिए जितना आवश्यक स्नेह-दुलार है, उतना ही आवश्यक है, उसे समयानुकूल उद्बोधन देना । यह नहीं सोचना चाहिए कि बालक क्या समझता है ? यह बड़ी भ्रांति है । समझने-समझाने के लिए भाषा भी एक माध्यम है; पर वही सब कुछ नहीं, स्नेह-स्पन्दनों और विचार-तरङ्गों के सहारे मनुष्य अधिक गहराई से समझता है । भाषा भी उसी को स्पष्ट करती है । बालक भाषा न भी समझे, तो भी मूल स्पन्दनों के प्रति बहुत संवेदनशील होता है । अपने मनोरंजन या खीझ की प्रतिक्रिया स्वरूप उसके साथ फूहड़ वार्तालाप नहीं करना चाहिए, उसे

सम्बोधित करके प्रबोधन देने का शुभारम्भ इस संस्कार के समय किया जाता है, जिसे विचारशीलों, हितैषियों द्वारा आगे भी चलाते रहना चाहिए।

क्रिया और भावना - आचार्य बालक को गोद में लें। उसके कान के पास नीचे वला मन्त्र बोलें। सभी लोग भावना करें कि भाव-भाषा को शिशु हृदयंगम कर रहा है और श्रेष्ठ सार्थक जीवन की दृष्टि प्राप्त कर रहा है।

ॐ शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि,
संसारमाया परिवर्जितोऽसि।
संसारमायां त्यज मोहनिद्रां,
त्वां सद्‌गुरुः शिक्षयतीति सूत्रम्॥

प्रबोधन के बाद पूर्णाहुति आदि शेष कृत्य पूरे किये जाएँ। विसर्जन के पूर्व आचार्य, शिशु एवं अभिभावकों को पुष्प, अक्षत, तिलक सहित आशीर्वाद दें, फिर सभी मंगल मन्त्रों के साथ अक्षत, पुष्प वृष्टि करके आशीर्वाद दें।

आशीर्वचन-आचार्य बालक-अभिभावक को आशीर्वाद दें।नीचे लिखे मन्त्र के अतिरिक्त आशीर्वचन के अन्य मन्त्रों का पाठ भी करना चाहिए।

हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्चस्वी, तेजस्वी श्रीमान् भूयाः॥

* * *